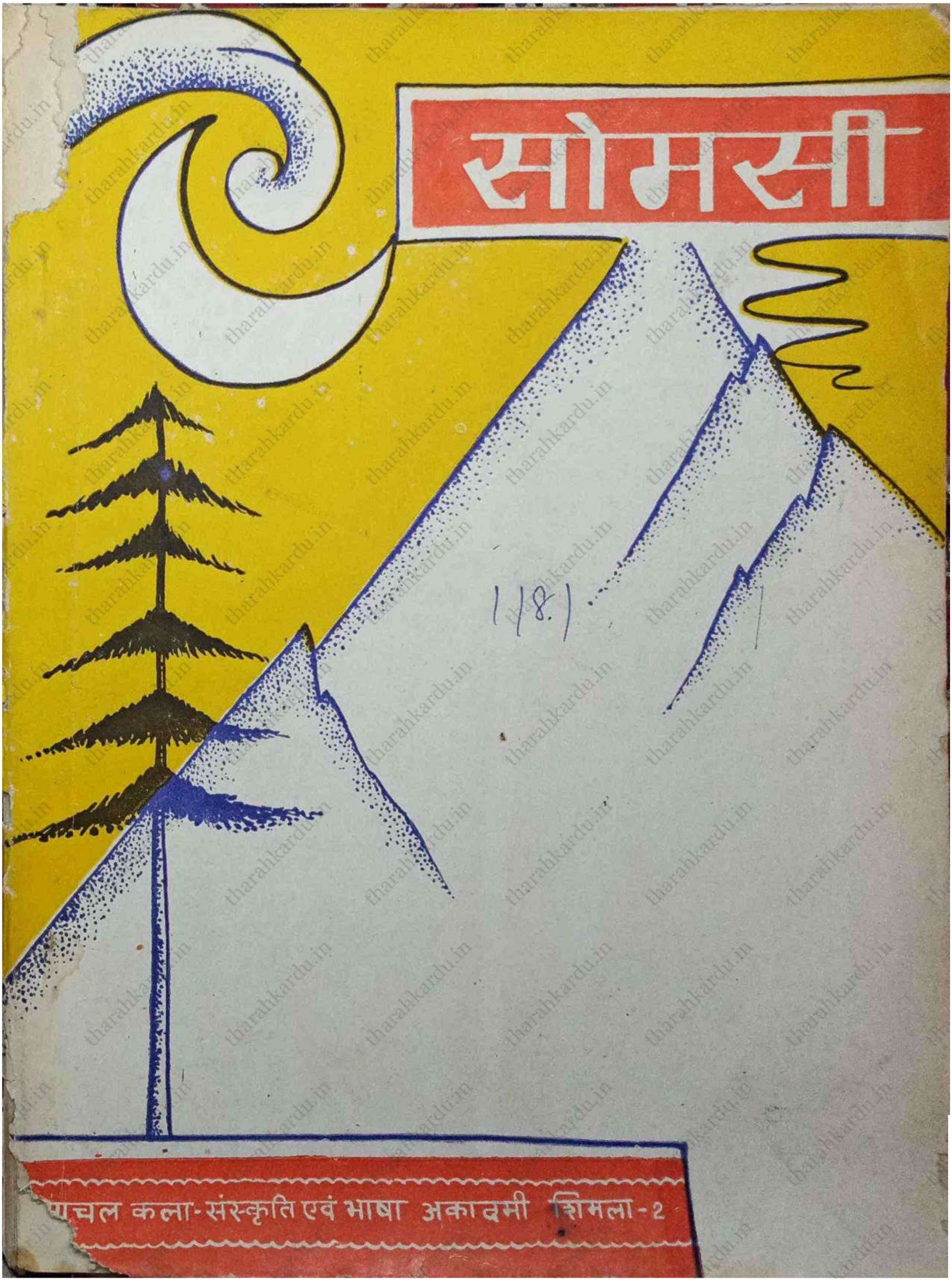
सोमसी
चल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला-2

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 7 | जनवरी, 1981 | अंक 1

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२५

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,
पीच ब्लाज्म काटेज, शिमला - 171002

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		(i)
2.	पहाड़ी भाषा की संस्कृत-मूलकता	–श्री लेखराम शर्मा	1
3.	भाषा का धर्म और धर्म की भाषा	–श्री प्रेम पखरोलवी	10
4.	हिमाचल प्रदेश में मामा शब्द की लोकप्रियता	–श्री दुर्गादत्त शास्त्री	16
5.	हिमाचल लोक विश्वासों में भूत प्रेत	–श्री हरिकृष्ण मुरारी	22
6.	सांस्कृतिक पर्व – लोहड़ी	–श्री सुदर्शन डोगरा	25
7.	हिमाचल प्रदेश में शिवरात्रि पर्व	–श्री बृजमोहन शिलवाल	31
8.	रावण व्यक्तित्व और कृतित्व	–श्री चन्द्रशेखर बेबस	38
9.	ऊना नगरी के प्रसिद्ध देव-स्थान	–श्री खुशीराम शर्मा	43
10.	सूरमा होकू रावत का विस्मृत जन आन्दोलन	–श्री रूपकुमार शर्मा	46
11.	महाराजा संसारचन्द की जन्मभूमि विजयपुर का सीता राम मन्दिर	–श्री शशिकान्त शास्त्री	53
12.	हिमाचल में एक और पर्यटन स्थल – अर्की	–श्री बद्रीसिंह भाटिया	58
13.	काहिका – जिस में नौड़ मरता है	–श्री लीलाधर पराशर	63
14.	डाडा सीवा का ऐतिहासिक महत्व	–स्वर्ण कान्ता शर्मा	65
15.	कांगड़ा के लोक-गीतों में जन्म संस्कार	–श्री नन्दकिशोर 'परिमल' गुलेरी	68
16.	महासुई लोकोक्तियों का प्रचलन	–मीना शर्मा	71
17.	किन्नर कैलाश शिवलिंग शिखर आरोहण	–श्री कृष्णचन्द काएथ	75
18.	गीत, नाटक एवं नृत्य क्षेत्र में अकादमी की गतिविधियां	–श्री अशोक हंस	83
19.	पुस्तक समीक्षा – फूल और आंसू	–गायत्री शर्मा	86
20.	पहाड़ी साहित्य इतिहास एवं समीक्षा पहाड़ी में नाटक लेखन	–श्री बलदेवकुमार ठाकुर	89
21.	लोक-गीत की समृद्ध जीवन शक्ति	स्वर्गीय श्री हरिचन्द पराशर	96

सम्पादकीय

जब भी भारत में जनगणना का समय आता है, तभी भाषाओं से सम्बन्धित विषय समाज में उभर कर सामने आता है। कारण स्पष्ट है। जब भारत में एक बार प्रशासनिक इकाई के लिए भाषा को मूलाधार मान लिया गया और उस आधार पर विभिन्न राज्यों का गठन हो गया तो प्रत्येक भाषा और भाषा के समर्थकों को अपना विस्तार क्षेत्र अधिक विस्तृत दिखाना स्वाभाविक हो गया है। इसी संदर्भ में पिछले दिनों पहाड़ी भाषा के बारे में भी विधान सभा में तथा विधान-सभा के बाहर खूब चर्चा रही। हम सभी यह अच्छी तरह जानते हैं कि १९६६ में पंजाब का पुनर्गठन नितान्त भाषा के आधार पर हुआ है और उसी के परिणामस्वरूप विशाल हिमाचल प्रदेश का गठन भी पूर्णतः पहाड़ी भाषा और पहाड़ी संस्कृति के आधार पर हुआ। पंजाब सीमा आयोग रिपोर्ट (३१ मई, १९६६ को प्रस्तुत) के पृष्ठ दो पर स्पष्ट लिखा है :—

"पंजाब में सम्मिलित पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों को, जो हिमाचल प्रदेश के साथ लगते हैं और जिनका उस टेरेटरी के साथ भाषात्मक एकता और सांस्कृतिक साम्यता है, हिमाचल प्रदेश के साथ मिलाना चाहिए।"

अब इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश की स्थापना भाषायी और सांस्कृतिक समानता पर हुई और यह भाषा निश्चय ही न पंजाब की पंजाबी थी न हरियाणा की हरियाणवी या हिन्दी। अब इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हिमाचल प्रदेश के मुख्य मन्त्री महोदय द्वारा प्रदेश की जनता से यह अपील करना कि जनगणना में अपनी मातृ भाषा 'पहाड़ी' लिखाई जाए अत्यन्त उचित, न्यायसंगत और समयानुकूल था और एक जागरुक नेता के लिए ऐसा आग्रह करना स्वाभाविक है। इस अपील के विरुद्ध अनेक आवाजें उठाई गई हैं। साधारणतः आलोचकों का कथन है, कि :

१. पहाड़ी नाम की कोई भाषा नहीं है;
२. जिसे पहाड़ी के समर्थक पहाड़ी भाषा कहते हैं वह ऐसी बोलियों की खिचड़ी है जो एक दूसरे को समझ नहीं आती;
३. इसकी कोई लिपी नहीं है। इसलिए बिना लिपि के भाषा कैसे हो सकती है ?
४. हिमाचल की मातृ-भाषा हिन्दी है।

पंजाब के पुनर्गठन से ही यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हिमाचल प्रदेश की एक स्वतन्त्र भाषा है चाहे उसका नाम कुछ ही हो। इस तथ्य को आरम्भ से आज तक सभी भाषाविदों (साधारण विद्वानों ने नहीं) ने एक मत से स्वीकार किया है। जब भारत का अभी विधिवत भाषा सर्वेक्षण भी आरम्भ न हुआ था, उससे पूर्व ही ग्राहम बेली ने इस क्षेत्र की बोलियों का स्वतन्त्र भाषा के रूप में अध्ययन और सम्पादन किया था। अपने लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया में डा० ग्रियर्सन ने इस क्षेत्र की भाषा को भारतीय आर्य भाषाओं की भीतरी उप शाखा के अन्तर्गत पहाड़ी श्रेणी में एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार करके अध्ययन किया है। पहाड़ी के कुछ आलोचकों का कहना

है कि 'पहाड़ी' के अन्तर्गत डा० ग्रियर्सन ने पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी के नाम से तीन भाषा-समूहों का उल्लेख किया है। अतः जब हिमाचल प्रदेश की भाषा को पहाड़ी कहा जाने लगा है तो उक्त तीन में से कौन पहाड़ी है। ऐसे विद्वानों को पहले डा० ग्रियर्सन के भारतीय-भाषा-सर्वेक्षण को सचमुच पढ़ लेना चाहिए। उन्होंने पूर्वी, मध्य और पश्चिमी नाम से तीन भाषा समूहों का वर्णन नहीं किया है, वरन् उन्होंने पूर्वी पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी और मध्य पहाड़ी नाम से तीन स्वतन्त्र भाषाओं को "पहाड़ी समुदाय" के नाम से अध्ययन किया है। इस दृष्टि से पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी भगिनी-भाषाएं (सिस्टर लेंगवेजिज़) तो हैं परन्तु एक भाषा के तीन रूप नहीं हैं। इसीलिए आज पूर्वी पहाड़ी भाषा नैपाली और मध्य पहाड़ी भाषा गढ़वाली के नाम से जानी और पहचानी जाती हैं और फलतः पहाड़ी भाषा वह भाषा है जिसे डा० ग्रियर्सन ने पश्चिमी पहाड़ी कहा है।

यह तथ्य बाद में डा० सुनीति कुमार चैटर्जी ने भी स्वीकार किया है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के तीन शाखाओं में विभक्त करने के डा० ग्रियर्सन के सिद्धांत से डा० चैटर्जी सहमत नहीं थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने पर्याप्त प्रमाण भी दिए। परन्तु भारतीय आर्य-भाषाओं का अपने रूप से उदीच्य, प्रतीच्य, मध्यदेशीय, प्राच्य और दाक्षिणात्य श्रेणियों में विभाजन करके उनमें पहाड़ी भाषाओं को कहीं स्थान न देकर अलग रूप कह कर इन्हें पैशाची, दरद या खश प्राकृतक से प्रसूत माना है। डॉ० चैटर्जी का विचार था कि "मण्डियाली को पहाड़ी की केन्द्रीय बोली मान कर पहाड़ी भाषा का विकास करना चाहिए।"

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा डॉ० चैटर्जी के भौगोलिक वर्गीकरण के आधार पर ही भारतीय आर्य भाषाओं का श्रेणीकरण करते हैं, जिसमें वे पहाड़ी भाषाओं को स्पष्टतः किसी वर्ग में नहीं रखते। परन्तु उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा का इतिहास' में पहाड़ी भाषाओं का सम्बन्ध शौरसैनी अपभ्रंश से स्थापित किया है। डॉ० उदय नारायण तिवारी ने भी भोजपुरी भाषा का अध्ययन करते हुए पहाड़ी बोलियों को शौरसेनी से प्रसूत माना है। डॉ० भोलानाथ तिवारी पहाड़ी को हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती के साथ शौरसेनी से प्रसूत मानते हैं। डॉ० हरदेव बाहरी को डॉ० ग्रियर्सन और डॉ० चैटर्जी, दोनों के भाषा वर्गीकरण पर आपत्ति है। वे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को 'हिन्दी' और 'अहिन्दी' दो वर्गों में रख कर उनका विभाजन करते हैं। इस विभाजन में वे पूर्वी पहाड़ी अर्थात् नेपाली को स्पष्टतः अहिन्दी वर्ग में रखते हैं, और मध्य पहाड़ी को हिन्दी वर्ग में। मध्य पहाड़ी का विशेष रूप से उल्लेख करके वे इसे हिन्दी की पांच उप-भाषाओं में से एक उप-भाषा मानते हैं। लेकिन पश्चिमी पहाड़ी का कहीं भी उल्लेख नहीं करते। इस प्रकार वे हिमालय की तराई की भाषाओं के पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी वर्ग को तो मानते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु इनमें से केवल दो का वर्णन करके पश्चिमी वर्ग का हवाला नहीं देते। इस विचारधारा के समर्थकों में डॉ० गोविन्द चातक का नाम भी उल्लेखनीय है। "मध्य पहाड़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन" के नाम पर उन्होंने "गढ़वाली बोली" का विशेष अध्ययन किया है। डॉ० ग्रियर्सन और डॉ० चैटर्जी की धारणा का विरोध करते हुए वे पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार दरद, खश या पैशाची प्राकृत होने का खण्डन करते हैं। उनके अनुसार पहाड़ी भाषाएं शौरसेनी प्राकृत से प्रसूत हुई हैं।

–एम० आर० ठाकुर

पहाड़ी भाषा की संस्कृत–मूलकता

–लेख राम शर्मा

संस्कृत को विश्व की भाषाओं में प्राचीनतम व विश्व भाषाओं की जननी होने का गौरव प्राप्त है। लैटिन, फ्रेञ्च, जर्मन, रूसी, अरबी व फारसी आदि भाषाओं पर संस्कृत का व्यापक प्रभाव है। अंग्रेजी को ही लें, वह अपने बीसियों शब्दों के लिए संस्कृत से प्रभावित है। यथा I-अहम्, We-वयम्, Thou-त्वम् You-यूयम्, She-सा, They-ते, Name-नाम, Committee-समिति (कमेटी को समिति भी पढ़ा जा सकता है), Dexterity-दक्षता, Van-वाहन, Camel-क्रमेलक, Night-नक्त, Mother-मातर्, Brother-भ्रातर्, Daughter-दुहितर् आदि। जहां तक भारतीय भाषाओं का प्रश्न है, उनकी तो श्वासनली ही संस्कृत है इसके बिना वे निष्प्राण हैं। संस्कृत प्रसूत भारतीय भाषाओं में पहाड़ी भाषा के संस्कृत से सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषाओं के मूल्यांकन में सम्बन्धित भाषा के संस्कृत के साथ सम्बन्ध को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यदि इस दृष्टि से देखें तो पहाड़ी भाषा प्रथम स्थान की अधिकारिणी है क्योंकि यह संस्कृत का ही विकृत रूप है। पहाड़ी के अध्ययन से यह अनुमान सहज में ही लग जाता है कि किसी समय इस भूखण्ड की बोलचाल की भाषा संस्कृत थी। दुर्गम क्षेत्र होने के कारण प्राचीन काल से ही हो रहे विदेशी आक्रमणों से यह क्षेत्र मुक्त रहा, परिणाम स्वरूप इसकी भाषा, रीतिरिवाज व संस्कृति अक्षुण्ण रूप में अत्यन्त प्राचीनधारा से यथावत् जुड़ रहे।

पहाड़ी भाषा पर संस्कृत का विभिन्न पक्षीय प्रभाव है :–

१. लम्बी यात्रा करने के पश्चात् बदले हुए स्वरूप वाले शब्द।

२. तत्सम शब्द जो उच्चारण में या किञ्चित्परिवर्तित होकर तद्भव हो गये हैं।

३. उपसर्ग, समास, अव्यय व सर्वनाम शब्द।

४. निरुक्त, पाणिनीय व्याकरण एवम् भाषा-विज्ञान के कई नियमों के अन्तर्गत विकृत या विकसित होकर पहाड़ी में आने वाले शब्द। इनमें परसवर्ण, आदि स्वर-लोप, वर्ण-विपर्यय, सम्प्रसारण, समीकरण विषमीकरण आदि नियम उल्लेखनीय हैं।

५. रामायण, महाभारत व पुराण आदि ग्रन्थों में पाई जाने वाली सूक्तियों या लोकोक्तियों का पहाड़ी में प्रचलन।

६. पहाड़ी लोक-गाथाएं।

१. **लम्बी यात्रा वाले कुछ शब्द :**

१. **डीना :** कम जहरीला एक प्रकार का सांप ।

यह सांप प्राय: पानी में रहता है । सांप का खेल दिखाने वाले बहुधा इस प्रजाति के सर्प को ही पकड़ते । इसके विषय में विश्वास किया जाता है कि यदि यह काट भी दे तो जहर तभी चढ़ता है बज कि काटे गये व्यक्ति को तत्काल कनेर (गनीरा) नामक पौधा दिखाई पड़ जाये, अन्यथा नहीं ।

संस्कृत में 'डुण्डुभ' प्रजाति के सर्पों के विषय में कहा गया है कि–

'डुण्डभ' निर्विषाः सर्वे अहयः सविषाः स्मृताः' अर्थात् डुण्डुभ निर्विष होते हैं जब कि अहि विष वाले ।

इसकी पुष्टि महाभारत भी करता है । वहां वर्णित 'रुरु–प्रमद्वरा' आख्यान में सर्पदंश से प्रमद्वरा की मृत्यु हो जाने पर रुरु सर्प को देखते ही मार देने की प्रतिज्ञा करता है । प्रतिज्ञानुसार एक दिन वह ज्यों ही एक सर्प की हत्या करने का प्रयत्न करता है तब वह सर्प उसका कारण पूछता है। रुरु प्रमद्वरा की घटना सुनाता है । तब वह सर्प-वेषधारी ऋषि कहता है कि मैं तो डुण्डुभ हूं। मेरे काटने से मृत्यु का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । उसे किसी अन्य सांप ने काटा होगा । वहां कथित सर्पोक्ति इस प्रकार है :

अन्ये ते भुजंगा ब्राह्मन् ये दशन्तीह मानवान् ।
डुण्डुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥ –महा० (आदि०) १०.३

स्पष्ट है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व मन्द विष वाले सर्पों को 'डुण्डुभ' कहा जाता था, जिसका आजकल पहाड़ी में 'डीना' रूप हो गया है ।

२. **ऐरण :** कभी प्रसुता न होने वाली बकरी ।

सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में ही 'वन्ध्या' के अर्थ में 'ईरिन' शब्द मिलता है । लौकिक साहित्य में भी अनुर्वरा (उपज न देने वाली बंजर भूमि) के लिए ईरिण का प्रयोग मिलता है ।

यही 'ईरिण' शब्द पहाड़ी में 'ऐरण' के रूप में बकरी के लिए रूढ़ हो गया है ।

३. **दाज-दक्खण :** पहाड़ी में 'दाज शब्द' संस्कृत के 'दाय' शब्द (पैतृक सम्पत्ति) से आया है तथा 'दक्खण' दक्षिणा से । विवाह के समय लड़की को दी जाने वाली वस्तुओं को 'दाज दक्खण' कहते हैं जो संस्कृत का 'दायदक्षिणा' शब्द है ।

४. **झियूर-झींगुर :** झींगुर के लिए संस्कृत का शब्द 'झीरिका' है । महाभारत की एक कथा के अनुसार माण्डव्य ऋषि को बाल्यकाल में एक झींगुर के पुच्छ भाग में तिनका देने के पाप के परिणाम स्वरूप कई वर्ष सूली पर चढ़े रहना पड़ा था ।

आज भी बच्चे खेलते हुए झींगुरों को पकड़ लेते हैं तथा पुच्छ भाग में तिनते देकर उन्हें खुले आसमाम में छोड़ देते हैं तथा तिनके के आधार पर अपने-अपने झींगुर को पहचानते हुए कहते हैं—'मेरा झियूर ओह गया' ।

स्पष्ट है कि 'झिरिका' से ही 'झियूर' शब्द निःसृत हुआ । महाभारत कालीन झिरिका से खेली जाने वाली खेल आज भी अबोध बच्चों में झियूर से तथावत् खेली जाती है ।

२. **तत्सम शब्द :**

पहाड़ी में कुछ ऐसे तत्सम शब्द हैं जिन का उच्चारण इस प्रकार का हो गया है जिससे वे तद्भव प्रतीत होते हैं। संस्कृत के 'ष' व 'ज्ञ' का उच्चारण यहां 'ख' हो गया है। 'क्ष' कहीं-कहीं 'छ' भी उच्चारित होता है। एवमेव 'ल' की ध्वनि यहां 'ल़' है। उक्त श्रेणी में निम्न प्रकार के शब्द आते हैं :—

गाहण (गाहन) गेहूं निकालने की प्रक्रिया, खेतर (क्षेत्र) खेत, त्रै (त्रय्) तीन, पत्तर (पत्र) पत्ता, पुत्तर (पुत्र) पुत्र, पोल़ी (पोली) गेहूं के आटे से बनने वाला एक प्रकार का पुआ, मल्ल (मल्ल) पहलवान, मिंढा (मेण्ढः) भेड़ा, मैंहष (महिषी) भैंस, सुण्ड (शूण्डः) हाथी की सूण्ड, इत्यादि।

३. **उपसर्ग वाले शब्द (Suffix) :**

कु, सु व प्र आदि उपसर्गों का प्रयोग पहाड़ी में बहुलता से होता है।

कु—व्यञ्जन से शुरु होने वाले शब्दों में कु व सु का उच्चारण 'क' 'स' भी किया जाता है जैसे कलच्छणा (कुलक्षण) कजस (कुयश) आदि स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में यह 'कु' ही रहता है। जैसे—क्वन्न (कु+अन्न) ऐसे शब्दों में यण् सन्धि हो जाती है। 'कु' लगने से शब्द का अर्थ में बुरे या हीनता का भाव आ जाता है।

कु के अन्य उदाहरण—'बब्ब कबब्ब नी हुन्दे पुत्त कुपुत्त होई जान्दे' अर्थात् माता-पिता कुमाता-पिता नहीं होते हैं किन्तु पुत्र कुपुत्र हो जाते हैं।

क्वघ होणा, क्वघ गलाणा या क्वघ कमाना, से अभिप्राय अत्यन्त घृणित व निन्दित कार्य या कथन से होता है। क्वध शब्द 'कु+अध' से बना है। संस्कृत में अघ पाप को कहते हैं। पाप का स्वरूप ही निन्दित होता है, यदि उसमें 'कु' उपसर्ग के प्रयोग का अर्थ अत्यन्त निन्द्य कार्य से है और इसी अर्थ में 'क्वध' शब्द पहाड़ी में है। इसके अतिरिक्त कुखाण-बुरा भोजन कुजात-बुरी जाति, कसङ्ग कसाथ-बुरा साथ आदि शब्द भी हैं।

सु—श्रेष्ठ या उत्तम अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे–सलक्खणा (सुलक्षण) सलक्खणा बहुधा व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त होता है यथा 'जिम्में पुत्त सलक्खणे कन्धां ढई पईयां' अर्थात् पुत्र महाशय ऐसे शुभ लक्षणों वाले पैदा हुए कि दीवारें भी गिर पड़ीं। इसी प्रकार 'सकिर्त' (सुकृत) आदि शब्द हैं।

प्र—संस्कृत में 'प्र' लगाकर पितामह से प्रपितामह, मातामह से प्रमातामह, पौत्र से प्रपौत्र व प्रपितामही, प्रमातामही एवम् प्रपौत्री आदि शब्द बनते हैं। पहाड़ी में प्र के र् का उच्चारण 'ड़' हो गया है शेष क्रम उसी प्रकार है जैसे पड़दादा, पड़नानू, पड़पोता, पड़दादी, पड़नानी, पड़पोती विवाह आदि के समय गोत्रीय अनुबन्ध की स्थिति में कहा जाता है कि 'पड़ पया साक गया' अर्थात् 'प्र' का रिस्ता शुरू हो जाने पर गोत्रीय अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

समास–(Compounds)—पहाड़ी में समस्त शब्द भी संस्कृत से आए हैं :—
परतच्छ (प्रत्यक्ष)–सामने, परोखा (परोक्ष)–आंखों से परे, चवर्ख (चतुर्वर्ष)–चतुर्वार्षिक श्राद्ध, बाल़वधिया (वालवध्रि) अवस्था में पहले ही बधिया किया गया बैल, सलूणा (सलवणम् लवणेन सह इति सलवणम्) नमकीन सब्जी, तकाल़ (त्रिकाल), तरलोकी (त्रिलोकी) तीनों लोक आदि।

नञ् समास – पहाड़ी में बहुत से शब्दों के पहले 'अन' प्रयुक्त कर दिया जाता है। जिससे शब्द का अर्थ नकारात्मक हो जाता है। इसका उच्चारण 'अण' भी है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत में नञ् समास (Negative Compound) का नियम काफी स्पष्ट है। यहां स्वर से शुरू होने वाले शब्दों के पहले 'अन्' लगा दिया जाता है तथा व्यंजन से शुरू होने वाले शब्दों में 'अ'। जैसे—उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण, ईश्वर-अनीश्वर तथा सफल-असफल, हिंसा-अहिंसा आदि।

पहाड़ी में प्रायः सब प्रकार के शब्दों में 'अन' ही लगता है। इसका प्रयोग प्रायः कृदन्त (Past Participle) रूपों में होता है जैसे—अणमिथया (बिना सोचा हुआ) अणदेख्या (बिना देखा हुआ) अणसोच्या (बिना सोचा हुआ) आदि।

संस्कृत से आए इस अन को अब 'मन' भी कहा जाने लगा है, जैसे—अपणे बच्चे किसी जो भी मनप्यारे नी हुन्दे' अर्थात् अपने बच्चे किसी को भी अप्रिय (अनप्यारे) नहीं होते हैं। 'या' 'ताल् तेरी मनताल् मेरी' अर्थात् तू अपनी पसन्द की वस्तु लेले, तेरी अप्रिय वस्तु या तुझे नापसन्द मुझे सहर्ष स्वीकार्य है। इन वाक्यों में मनप्यारा-अनप्यारा व मनताल-अनताल है।

अव्यय शब्द (Indeclinable words) :

पहाड़ी	संस्कृत	हिन्दी
अज्ज	अद्य	आज
कदीं, काली	कदा	कब
तदीं, तॉली	तदा	तब
जदीं, जॉली	यदा	जब
पी	पुनः	फिर
बी	अपि	भी इत्यादि

सर्वनाम शब्द (Pronouns) :

अंऊ	अहम्	मैं
सः	सः	वह
मात्तड़	मादृश्	मेरे जैसा
तमात्तड़	त्वादृश्	तेरे जैसा
एँड़ा	एतादृश्	ऐसा
असां जो	अस्मान्	हमें इत्यादी

४. भाषा विज्ञान के नियमों के अन्तर्गत आए हुए स्वरूप वाले शब्द :

(क) परसवर्ण (Homogeneous) :—परसवर्ण में किसी भी हलन्त वर्ण को उससे अगले वर्ण का रूप हो जाता है। जैसे 'कर्म' शब्द से पहाड़ी में 'कम्म' शब्द आया है। यहां र् को परसवर्ण होकर म् हो गया है। इस प्रकार के अन्य शब्द :–

पहाड़ी	संस्कृत	हिन्दी
उन्न	उर्णः	ऊन
कन्न	कर्ण	कान

पहाड़ी	संस्कृत	हिन्दी
निम्मल्	निर्मल	साफ, मल रहित
दभ्भ	दर्भ	दर्भ, कुशा
सुप्प	शूर्पः	छाज आदि
सुक्का	शुष्कः	सूखा आदि

(ख) पूर्व सवर्ण : पूर्व सवर्ण में पिछले वर्ण के अनुसार अगले को भी वही वर्ण हो जाता है :—

अन्ना	अन्धः	अन्धा
अग्ग	अग्नि	आग
पत्त	पत्र	पत्ता
मत्त	मति	मति, बुद्धि
कम्मल्	कम्बल	कम्बल तथा गौ प्रजाति के पशुओं के गले में लटकता हुआ झालदार मांस

(ग) आदि स्वर लोप (Aphesis words) : इन शब्दों में आदि स्वर का लोप हो गया है जैसे :–

भ्यास	अभ्यास	अभ्यास
चर्ज	अश्चर्य	हैरानी (पहाड़ी में 'य' का उच्चारण 'ज' है जैसे कार्य–कार्ज)
चार्ज	आचार्य	मरणोत्तर संस्कार करवाने वाला ब्राह्मण
पाधा	उपाध्याय	धार्मिक संस्कार करवाने वाला ब्राह्मण
द्धराता	अर्ध रात्र	आधी रात का समय
हन्	आसन् (स को ह)	थे

(घ) विषमीकरण (Dissimilation) : विषमीकरण में वर्णों में परिवर्तन आ जाता है जैसे क को ग, प को फ आदि आदेश हो जाना यथा–

संस्कृत	पहाड़ी	हिन्दी
दन्त	दन्द	दान्त
हस्त	हत्थ	हाथ
अल्पमृत्यु	अल्फमौत	दुर्घटना से असमायिक मृत्यु
संक्रान्ति	संक्रान्द	महीने का प्रथम दिवस आदि

इसी आधार पर चम्पानगर से 'चम्बा' बना है।

(ङ) सम्प्रसारण : सम्प्रसारण में य् ई में, व् उ में तथा र् ऋ में बदल जाते हैं। यथा–

स्वर्ग	सुर्ग	स्वर्ग
व्यसनी	विसनी	किसी भी व्यसन वाला

संस्कृत	पहाड़ी	हिन्दी
भ्रष्ट	भृष्ट	भ्रष्ट
लवण	लूण	नमक

इसी प्रकार 'माण्डव्यनगर–माण्डवी-माण्डी या मण्डी', 'श्यामला से शिमला', 'मन्वालय–मनाली' आदि नगरों के नामों का संस्कृत नामों से सम्प्रसारण होकर वर्तमान रूप हैं।

(च) वर्ण विपर्यय : इसमें कुछ वर्ण आगे पीछे बदल जाते हैं, जैसे–

ईर्ष्या – रीष (ईर्ष्या से 'ईर्ख' शब्द भी प्रचलित है जहां 'ष्' को 'ख' हो गया है)

रुक्ख – वृक्ष (वर्ण विपर्यय ये 'ऋ व' व् को उ सम्प्रसार, ऋ को र्, होकर 'रु' बन गया, क्ष का उच्चारण 'ख' इस प्रकार पहाड़ी का 'रुक्ख' शब्द बना।'

(छ) विभक्ति रूपों वाले शब्द : कुछ शब्दों में अभी तक संस्कृत शब्दों के विभक्ति रूप ज्यों के त्यों हैं :–

पहाड़ी	संस्कृत	अर्थ
भूइयां	भूम्याम् (सप्तमी एक वचन)	भूमि पर (भूइयां सौणा बैठणा आदि भूमि पर सोना बैठना आदि)
त्थले	स्थले (सप्तमी एक वचन)	स्थल पर
अग्गे	अग्रे (सप्तमी एक वचन)	आगे आदि

यही ढंग कुछ स्थानों के नामों के विषय में है :– जसे – बिलासपुरे, ऊने, कांगड़े, चम्बे, हमीरपुरे रहणा जाणा आदि (बिलासपुर, हमीरपुर आदि में रहना जाना आदि) अब भी पहाड़ी में सप्तमी एक वचन ही प्रयुक्त किया जाता है।

५. प्राचीन ग्रन्थों में पाई जाने वाली सूक्तियों व लोकोक्तियों का पहाड़ी में प्रचलन :

पहाड़ी में प्रचलित बहुत से मुहावरे संस्कृत ग्रन्थों से इसमें आए हैं। इनमें कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं जो अकाट्य रूप से प्राचीन साहित्य से सम्बद्ध हैं तथा यह स्वीकारने के लिए बाध्य कर देते हैं कि इनका स्रोत यही साहित्य है और संस्कृत ग्रन्थों से तब से ही साथ आ गए हैं जब से कि बोलचाल की भाषा संस्कृत से किकृत रूप में ये बोलियां प्रादुर्भूत हुई हैं।

उदाहरणार्थ कुछ मुहावरे प्रस्तुत किए जाते हैं :–

१. इक्की पुत्ता री माव कने इक्की पत्ता री छांव कुछ नी हुन्दी – (एक पुत्र की माता तथा एक पत्ते की छाया न होने के बराबर होती है।)

इस आशय का श्लोक महाभारत में इस प्रकार है :–

चक्षुरेकं च पुत्रश्च अस्ति नास्ति च भारत
चक्षोर्नाशे तनोर्नाशः पुत्रनाशे कुलक्षयः। –आदि पर्व १००/६७.

(एक पुत्र व एक आंख का होना न होने के बराबर ही है, क्योंकि उस आंख के नष्ट होने पर शरीर का नाश व पुत्र के नष्ट हो जाने पर कुल का नाश हो जाता है।)

स्पष्ट है कि 'इक्की पुत्ता री माव' (एक पुत्र की माता) निस्सन्तान के समान होती है।

२. चोरा रिया नीतुरिया घा (या पट्ठे) तां खाणें ही ए – (दबाव, प्रभाव व मजबूरी में कोई कार्य करना।) शाब्दिक अर्थ – चोर द्वारा अपहृत होने पर भी गऊ को पट्ठे-तृण (घास) तो खाने ही पड़ते हैं।

यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि चोर द्वारा अपहृत बैल या भैंसा भी हो सकता है, तो मुहावरे में स्त्रीलिंग का ही प्रयोग क्यों हुआ है? या फिर बहुवचन 'चोरां रयां नीतु रयां' का प्रयोग होता जिसमें दोनों का समावेश हो जाता। इसके समाधान में उल्लेखनीय है कि अश्वघोष ने भी अपने काव्य सौन्दरनन्द में इसी भाव में इन्हीं शब्दों में स्त्रीलिंग में इस प्रकार लिखा है :–

विषयाद्विषयान्तरं गता प्रचरत्येव यथा हृतापि गौः। –८.४१

अश्वघोष का उक्त उल्लेख उस युग में प्रचलित इस प्रकार के उद्धरण को संकेतित करता है, जिसमें अपहृत होकर भी गौ के द्वारा घास चरने की बात कही जाती थी। अतः स्पष्ट है कि पहाड़ी में स्त्रीलिंग के प्रयोग वाला यह मुहावरा ऐसे ही किसी प्राचीन वाग्धारा पर आश्रित है।

४. तिस्स जे करनी तिस्स ही भरनी–(अपने-अपने कार्यानुसार फल प्राप्ति)।

इसी आशय से परिपूर्ण भागवतपुराण का पद्य इस प्रकार है—

'एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते, एको भुङ्क्ते सुकृतमेक एव दूष्कृतम्।'

(मनुष्य अकेला ही अपने अच्छे बुरे-कार्यों का फल भोगता है। अर्थात् जो करेगा वही भरेगा।

यही बात महाभारत में है :—

नान्यः कर्तुः फलं राजन्नुपभुङ्क्ते कदाचन। —आदि० २८-१३

अर्थात् कर्ता के अतिरिक्त उसके कर्म के फल को कभी भी कोई दूसरा प्राप्त नहीं कर सकता है।

स्पष्ट है—तिस्स जे करनी तिस्स ही भरनी।

५. पुत्त कुपुत्त होई जान्दे बब्ब कबब्ब नी हुन्दे— (पुत्र कुपुत्र हो जाते हैं माता-पिता कुमाता-पिता नहीं।)

यहां 'बब्ब' का अर्थ केवल पिता न होकर माता-पिता-दोनों हैं। संस्कृत में 'पितरौ' दो पिताओं का बोधक न होकर माता-पिता दोनों के लिए रूढ़ है। जैसे कालिदास रघुवंश के मंगलाचरण में लिखते हैं—

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

यहां पितरौ माता व पिता दोनों का बोधक है। दूसरी भाषाओं में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। अंग्रेजी का Parents शब्द दोनों का बोधक है।

अतः स्पष्ट है कि उक्त मुहावरे में भी 'बब्ब' से अभिप्राय माता-पिता दोनों से है, और संस्कृत में माता के कुमाता न होने की चर्चा बहुधा हुई है। इस मुहावरे के लिए हरिवंश व पुराणों के पद्यांश प्रस्तुत हैं—

अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत्। ह०व० ८-२३
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

६. सै जे सिर दीन्दा, सै सेर भी दीन्दा—(जो भगवान सिर–जन्म देता है, वह सेर अर्थात् आहार भी साथ ही दे देता है। इसी भाव का सुभाषित इस प्रकार है—

आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते।

(मनुष्य का आहार जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जाता है।)

७. मत्थे रिया लिखुरिया कोई नीं पूंजी सकदा—जो जिसके भाग्य में लिखा होता है, उसे कोई नहीं मिटा सकता है। भावार्थ यह कि जो कुछ अच्छा या बुरा किसी के भाग्य में होता है उसे छीनना या परिवर्तित करना किसी के वश की बात नहीं है। इसके लिए पुरानी सूक्तियां इस प्रकार हैं—

यल्लिखितं विधिना ललाटे तन्मार्जयितुं क: शक्त:।

अथवा

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं क: समर्थ:।

इसी प्रकार के कई अन्य मुहावरे हैं जो यहां दैनिक प्रयोग में व्यवहृत किए जाते हैं।

६. लोक गाथाएं :

संस्कृत साहित्य के कई आख्यानों ने पहाड़ी लोक गाथा के भण्डार को समृद्ध किया है।

यद्यपि पहाड़ी गाथाओं के उपजीव्य ग्रन्थ रामायण, महाभारत व पुराणादि ही हैं, तथापि अनेक कथाओं के पात्र ही शास्त्र चर्चित हैं जबकि विषयवस्तु में पर्याप्त भिन्नता है। इसके दो ही कारण प्रतीत होते हैं :—

१. इनका स्रोत सम्प्रति अनुपलब्ध प्राचीन साहित्य का होना।
२. सम्प्रति प्राप्य शास्त्रों के आधार पर मौलिक चिन्तन व कल्पना से इनके स्वरूप में परिवर्तन।

अस्तु! कारण चाहे कुछ भी रहा हो। इन कथाओं में 'इन्द्र-अहल्या' समुद्र मन्थन, चन्द्र ग्रहण, संसरबाहु, धनत्थर वैंद, बिस्सकम्म व कृष्ण लीला से सम्बद्ध अनेक कथाएं हैं। इन कथाओं के नायक संसरबाहु 'सहस्रबाहु', धनत्थर वैंद 'धन्वन्तरि वैद्य', बिस्सकम्म 'विश्वकर्मा' आदि शास्त्रीय व्यक्ति हैं। कृष्ण गाथाओं में यहां चर्चित चानू भागवत आदि में वर्णित 'चानूर' पहलवान है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पहाड़ी भाषा एक संस्कृत मूलक नियमबद्ध भाषा है। इसका वाक्य-विन्यास प्राचीन परम्पराओं को संजोए बैठा है, जिससे प्राचीन भारत के उस जन जीवन पर और अधिक तथ्यपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है जिसका अधिक भाग अभी तक भी अन्धकारमय है। जैसे बधिया (Castration) करने की क्रिया को व्यक्त करने के लिए यहां 'बट्ट लाणा' प्रयुक्त किया जाता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि बधिया करने के लिए यह क्रिया कैसे रूढ़ हुई। इसका उत्तर स्पष्ट है कि मशीन से उक्त क्रिया सम्पन्न करने का प्रचलन अभी हुआ है। इससे पूर्व इस कार्य में लगभग आधे किलो वजन के एक विशेष प्रकार के पत्थर का प्रयोग किया जाता था। इस पद्धति का प्रयोग अब भी कई क्षेत्रों में होता है।

अतः बट्ट–पत्थर लगाने से इस प्रक्रिया को 'बट्ट लाणा' कहा जाता है। भले ही इस क्रिया में आजकल अर्थापकर्ष भी आ गया है किन्तु रूढ़िवश मशीन से कार्य निष्पादन को भी 'बट्ट लाणा' ही कहा जाता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्तोता द्वारा किसी व्यक्ति को क्लीब (नपुँसक) बनाने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह अपने पत्थरों से उस व्यक्ति के वृषणद्वय का मर्दन करके पुंस्त्वहरण कर दे। मन्त्र इस प्रकार है—

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि,
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्डौ। **अथर्व० ६-१३८-२**

ऐसी ही कई अन्य दृष्टियों से पहाड़ी भाषा में शोध के कई तत्व विद्यमान हैं। इसके स्वरूप को देखकर कहा जा सकता है कि यह विद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जा सकती है तथा विश्वविद्यालय में इसका एक स्वतन्त्र विभाग स्थापित किया जा सकता है।

ग्राम कोलका, डाकघर गण्ढीर
ज़िला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)

भाषा का धर्म और धर्म की भाषा

–प्रेम पखरोलवी

यह सम्भावना काफी वजनी लगती है कि युगों पहले मनुष्य पशुओं जैसी स्थिति में था। पश्चात्, धीरे-धीरे उसने अपनी आवश्कताओं के आधार से वस्तुओं का संग्रह किया और उनका नामकरण किया। क्रमशः भावों और विकारों के विभिन्न रूप उपस्थित होते चले गए। फिर उनका आदान प्रदान बढ़ा। मानव-जीवन की इस विकास-प्रक्रिया में उसकी 'भाषा' का योग अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। कहना कठिन है कि आज हम जिस भाषा में नाना सूक्तियां, लोकोक्तियां और कहावतें उपमायें एवम् रूपक इस्तेमाल कर रहे हैं, वे काफी नई और आधुनिक हैं। क्या ये भाषा-कानन में सजे-खिले सुन्दर पुष्प नहीं हैं, जिनका बीज इस भूमि में सदियों पहले गिरा था।

परिभाषा 'भाषा' की :

भाषा को आम बोलचाल में 'भाखा' भी कहा जाता है मगर जरा वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो मानना होगा कि 'मुख से निकलने वाली व्यक्त ध्वनियों अथवा सार्थक शब्दों और वाक्यों का वह समूह जिसके द्वारा मन के विचार दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं।'[1] विश्व भर में नाना भाषायें तथा बोलियां प्रचलित रही हैं जिनके माध्यम से मानव-मन की कामनाएं साकार होती रही हैं और आज भी होती हैं। इस विकास ने एक सुन्दर परम्परा का रूप धारण कर लिया है। भाषा का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। स्वर्गीय रघुनन्दन शर्मा जी का मत है कि 'आस्तिकों के मतानुसार जिस मनुष्य जाति को ईश्वर प्रदत्त ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसकी भाषा भी ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त हुई, क्योंकि ज्ञान बिना भाषा के ठहर नहीं सकता। ज्ञान और भाषा का सम्बन्ध जुड़वां भाई और बहन की भान्ति है। .....' [द्रष्टव्य वैदिक सम्पत्ति, पृ० २६१.] भाषा मनुष्य को पशुजगत से भी विलगाती है और उसकी श्रेष्ठता दर्शाती है। वह मानव जाति की विशेष निधि ही तो है। संसार में मानव का ऐसा कोई वर्ग नहीं है, ऐसी कोई जाति नहीं है, जहां पर भाषा का प्रयोग न होता हो। बल्कि कुछ विचारकों का तो यहां तक कहना है कि आदि मानव ज्ञान और भाषा के सहित ही पैदा हुआ था। मानव निज स्वाभाविक जरुरतों की सम्पूर्ति के लिए एक दूसरे के सम्पर्क में आता है। यह सम्पर्क ही भाषा के विकास का हेतु बनता है। मानव के विचार शिशु भाषा के रूप में ही थिरकते हैं, किलकारियां भरते हैं। जरा सोचें, यदि भाषा न होती तो आदमी की क्या गति होती। उसके हृदय की सम्वेदनशीलता को कहां ठौर मिलता। यह भाषा ही तो है जिसके तुफैल से मानव-हृदय की तमाम मनुहारों कल्पनाओं को सही रूप प्राप्त होता है। उपयुक्त अर्थ मिलता है। प्रत्येक जाति, देश एवं राष्ट्र की निजी भाषा में उसका समूचा व्यक्तित्व निखर उठता हैं।

---

1. देखें नालंदा विशाल शब्द सागर पृ० १०२१ : व्याख्या में इसे 'बोली' भी माना गया है। जबान **(Language)** की पर्यायवाचक भी है भाषा।

कविता की भाषा :

कविता जिसे हम प्राणों का संगीत कहते हैं, भाषा के बिना, भला क्यों कर निज निर्माण कर पाती ? कवि की आकुलता भाषा के रूप में स्पंदित होकर एक ऐसे भाव लोक का सृजन करती है, जिसमें विश्व-हृदय डूबने-उतराने लगता है। कहना न होगा कि कविता भाषा की चिर ऋणी है। पर विचार का दूसरा पहलू यह है कि भाषा के जन्म का श्रेय क्यों न हम कविता को दें ? वायु जिस क्षण शांत होती है, तब वह शब्द रहित कही जाती है। मगर वायु का आलोड़न–विलोड़न, उसका कम्पन एवं विवर्धन जोरदार रव की सृष्टि करता है। वायु का यह आत्म-मंथन शब्द का कारण बनता है। ठीक उसी भांति कवि हृदय का मंथन-उद्वेलन भाषा भाषा को जन्म देता है। कवि निज कला द्वारा भाषा का शृंगार करता है। कविता का स्वरूप ग्रहण करने वाली भाषा वह सूर्य है जिसकी प्रकाश रश्मियां अनंत दिशाओ में विकीर्ण होती रहती हैं।

भाषा और धर्म :

धर्म की भाषा और काव्य की भाषा के बीच बहुत पुरातन समय में एक सहज सम्बद्धता परंपरित होती चली आयी है। हमारा प्राचीन वाङ्मय काव्यपरक है। धर्म का विवेचन भी कविता में हुआ है। अतः आज यदि हम काव्य और धर्म को एक ही समझने लगें हैं, तो आश्चर्य का कोई मुकाम नहीं होना चाहिए। तात्विक दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है। हां उनके क्रियात्मक रूप में अवश्य अन्तर प्रकट होता है। समझने की बात यह है कि काव्य जब निज गहनता एवं तीव्रता के कारण जीवन में स्पंदित हो उठता है, तब वही धर्म बन जाता है। और उधर धर्म जिस समय जीवन के तल से केवल छितराते हुए निकल जाता है, तब उसे काव्य की संज्ञा प्राप्त होती है। धर्म की भाषा निश्चय ही उद्भावना परक होती है। धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध प्रार्थना के मन्त्र, स्तोत्र आदि को पढ़ कर हृदय में एक प्रकार की विशेष भाव दशा की उद्भावना होती है। उस भाषा में भाव जैसे मूर्त रूप धारण कर लेता है। धार्मिक भाषा का और भी एक प्रकार है–नाटकीय। उक्त नाटकीय भाषा में दंतकथाओं से सम्बन्द्ध तमाम तत्वों का समावेश रहता है। धर्म का आधार है विश्वास इसलिए धर्म की भाषा अपने में एक बहुत बड़ा विश्वास लेकर उजागर होती है। विश्वास एवं निष्ठा की भूमिका में जब हृदय सहज उल्लास का अनुभव करता है, तब उसकी वृति अभिनयात्मक हो जाती है और यह अभिनयात्मक भाषा के माध्यम से ही व्यक्त हो सकती है। धर्म-तत्व स्पष्टतः ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा दरपेश लाता है। जाहिर है कि ईश्वर सम्बन्धी कोई भी बात गणनात्मक एवं तार्किक रूप में पेश नहीं की जा सकती। अतः धर्म की भाषा में काव्यात्मकता रहती है।

दोहरी भाषा :

साधारणतः हम सब दोहरी भाषा का प्रयोग करते हैं। एक कलात्मक भाषा और दूसरी वैज्ञानिक की भाषा प्रकृति और जीवन की व्याख्या वैज्ञानिक भी करता है। पर उसकी व्याख्या कवि द्वारा की जाने वाली जीवन जगत की व्याख्या से भिन्न होती है। कवि पुरुष और प्रकृति दोनों के अन्तराल में प्रवेश कर ऐसे स्वरूपों की उद्भावना करता है, जो वैज्ञानिक की शक्ति के परे हैं। जब धर्म का वर्णन काव्य रूप में होने लगता है, तब तत्ववेता विज्ञानिक और कवि

दोनों को कहीं पीछे छोड़ जाता है। धर्म की भाषा कुछ ऐसी बात की अभिव्यक्ति करती है, जो और किसी प्रकार की भाषा में सम्भव नहीं हो सकती। धार्मिक मनुष्य दैवी शक्ति से सम्पन्न होकर एक दूसरे के मर्म को सहज ही समझ लेते हैं। विज्ञान की भान्ति ही धर्म की परिभाषा भी कुछ सरल नहीं है। धर्म किसी देश या जाति की वह आस्था होती है जो परम्परागत रूप से मनुष्य में चली आती है। धर्म बलात् किसी पर लादा नहीं जा सकता। आप धर्म में, यदि निज हित देखें तो उसे अपना लें, अन्यथा रहने दें। धर्म के प्रति आस्था कतिपय सिद्धान्तों तथा कुछ क्रिया-कलापों में सन्निहित होती है और उक्त धर्म पर आरूढ़ व्यक्ति उन सिद्धान्तों का प्राणपन से पालन करता है। धर्म को न मानने वालों को नास्तिक कहा जाता है। इन्हीं लोगों के लिए 'धर्म-तत्त्व' किसी गहन गुफा में दुबका पड़ा हुआ है।

विज्ञान आस्था पर आधारित न होकर तर्क पर आधृत होता है। विज्ञान नाम है किसी विषय के क्रमबद्ध विश्लेषण और तर्कसंगत अध्ययन का। इसी से वैज्ञानिक की भाषा का आदर्श है उसका अनाटकीय होना। धर्म पौराणिकता का पक्षधर रहा है और विज्ञान तर्क मूलक है। यों साधारणतः कवि और वैज्ञानिक दोनों ही तथ्यों के निरूपण में प्रतीकों का सहारा लेते हैं। धर्म की भाषा अपेक्षया गीतात्मक होने से भावनाओं की उद्भावना के साथ-साथ भाव के मूर्त रूप का आह्वाण भी करती है। भाषा के दूसरे नाटकीय रूप को हम इच्छा और क्रिया की भाषा कह सकते हैं। इसमें प्रायः दन्तकथाओं के अन्तर्गत आने वाले सभी तत्त्वों का समावेश रहता है। प्रकृति के वृत्तों के नाटकीयकरण एवं मानवीयकरण के लिए पुराण (**Myth**) पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त होता है। अत्यन्त प्राचीन काल में प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय वृत्तों की अभिव्यक्ति ऐसे ही पौराणिक ढंग (**Mythical style**) द्वारा सम्पन्न होती थी।

धर्म की परिधि :

प्राचीन भारतीय जीवन के चार प्रमुख साध्य थे – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हें आज भी हम जीवन की बहुमूल्य कदरें (**Values of life**) ख्याल करते हैं। यही चतुर्वर्ग 'पुरुषार्थ चतुष्टय' के बतौर आज भी प्रतिष्ठित है। इनमें से धर्म और मोक्ष का स्थान निश्चय ही सर्वोपरी है। मोक्ष की नींव जीवन के प्रथम प्रभात से डाली जानी चाहिए और और इसकी प्रवृत्ति जिन्दगी भर चलती रहती है। हम मानते हैं कि इन्द्रिय-जनित सुखों की परिधि सीमित है। ये सुख वस्तुतः दुःख का अभाव मात्र है, आनन्द का पर्याय नहीं। स्वर्ग और मोक्ष के आनन्द की तुलमा में भौतिक सुख कहीं हीनतर है। स्वर्ग और मुक्ति के प्रति आकर्षण स्वभाविक है। विश्व की विविध वस्तुओं के प्रति नाना विध परिस्थियियों मे मनुष्य कैसा व्यवहार करें। धर्म के इस महत्त्वपूर्ण अंग का नाम ही आचार शास्त्र है, जिसका हम यहां महज संकेत भर करेंगे। धार्मिक विधानो के द्वारा प्रत्येक वर्ण और आश्रम के व्यक्ति के लिए उन कर्तव्यों का दिग्दर्शन कराया गया है, जो उसके निजी अभ्युदय और सामाजिक कल्याण के लिए सम्भव हो सकते हैं। वर्णाश्रम विधान और आचार शास्त्र दोनों ही आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए सर्वतः शुद्धि का सर्वाधिक महत्त्व बतलाते हैं। मोटे तौर पर धर्म के भी तीन स्वरूप हैं—श्रौत, स्मार्त और शिष्टाचार।[1] श्रौत वैदिक साहित्य के यज्ञादि का विवेचन

---

1. बौधायन–१.१.१-४।

निरूपण करता है और शिष्टाचार सामान्य धर्म है, जो किसी सुसंस्कृत समाज में गण्य मान्य व्यक्तियों के आपसी व्यवहार में लक्षित होता है। हमारे यहां धर्म की परिधि काफी विशाल रही है। मनु महाराज ने कहा है कि वह धर्म त्याज्य है, जिससे लोक को कष्ट हो। महाभारतकार की व्यवस्था यों है :–

'सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभेत्वेते समे स्यातामार्जवं वा विषिष्यते ॥'

–महा० भा० उद्योग० ३५·२।

मनु जी ने धर्म की शाश्वत परिभाषा इस प्रकार बतलाई है :–

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥' –मनु स्मृति ६·९२।

वे आगे कहते हैं कि 'धर्म' एक मात्र मित्र है जो मरने के बाद भी मनुष्य के साथ जाता है–

'एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।' –मनु स्मृति २ १७।

महाभारत में धर्म की व्युत्पत्ति दर्शायी गई है कि धारण करने की क्षमता रखने के फलस्वरूप 'धर्म' शब्द सार्थक है, क्योंकि वह समाज को धारण करता है :–

'धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।' –कर्ण पर्व ४९·५०।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय धर्म की परिधि में जीवन के सभी पक्षों और प्रवृत्तियों का आकलन हो जाता है। आधुनिक हिन्दू सनातन धर्म बहुत व्यापक है जिसकी प्राचीनतम रूप रेखा ऋग्वेद में मिलती है। पौराणिक युग में भी मानवता के सर्व श्रेष्ठ गुणों को धर्म का आवश्यक अंग माना गया है।

फिर विवाद क्यों है ?

तो भी हम पाते हैं कि संसार में ईश्वर के अस्तित्व और धर्म को लेकर आज भी बड़े-बड़े विवाद चलते हैं। ईश्वरवादी अनेकों तर्क जुटाते हैं। फिर भी ईश्वर की सिद्धि के लिए उनके तर्क नगण्य ठहरते हैं। उधर निरीश्वरवादी पण्डित भी चाहे जितने तर्क निकालें और सिद्ध करने का यत्न करें कि ईश्वर नहीं है और इस लिए धर्म की कोई जरुरत नहीं होनी चाहिए। फिर भी, उनके अन्तरमन में एक विरल शंका बनी ही रह जाती है कि क्या यह तमाम सृष्टि आकस्मिक घटना के सिवा और कुछ भी नहीं है ? पश्चिम के एक अभिनव विचारक ओ०बी० फॉथिंगहम ने शायद ठीक कहा –'ईश्वर की परिभाषायें लुप्त होती जा रही हैं, मूर्तियां डगमगा रहीं हैं और प्रतीक टूट कर बिखरते जा रहे हैं किन्तु तब भी मनुष्य का अगोचर अस्तित्व बराबर उभरना चाहता है, वह बराबर किसी अतल गहराई में से बाहर आने को बेचैन है।' एक दूसरा नास्तिक कहता है –'तीन कारणों से मैं नास्तिक नहीं हूं : प्रथम यह कि जीवन के प्रति नास्तिकता का सिद्धान्त अनुर्वर और रूढ़िग्रस्त होता है। दूसरा यह कि जीवन के प्रति नास्तिकों का दृष्टिकोण

नकारात्मक होता है। और तीसरा यह कि 'नास्तिकता' किसी भी मर्म का उद्‌घाटन नहीं कर सकती जबकि सृष्टि का यह तकाजा है कि इसके रहस्यों का उद्‌घाटन किया जाए।'

जाहिर है कि सृष्टि के रहस्य बुद्धि से उद्‌घाटित नहीं होते। इसके लिए एक विशेष प्रकार की शक्ति दरकार है जो पंडित नहीं एक संत ही अपने साथ रख सकता है। सहजानुभूति ज्ञान से कहीं बढ़ कर शक्तिशालिनी वस्तु है। आज विज्ञान की छड़ी ने सृष्टि के रंध्र-रंध्र में प्रवेश करके मनुष्य को यह बता दिया है कि अब कहीं भी कोई भी तत्त्व अविश्लिष्ट नहीं बचा है। मगर एमर्सन की यह अनुभूति फिर भी काफ़ी संगत जान पड़ती है—'प्रकृति का परदा अत्यन्त झीना है, महीन है। सर्वत्र विद्यमान प्रभु की सत्ता इस परदे के तार-तार से झांक रही है।' वे ओज भरे स्वर से कहते हैं—'अय, मेरे भाइयो! ईश्वर का अस्तित्व है। प्रकृति के केन्द्र में एक आत्मा बसती है। मनुष्य की इच्छा के ऊपर एक देवता का वास है। आत्मा के प्रत्येक कार्य में ईश्वर और मनुष्य का मिलन हो रहा है।'

धर्म, वस्तुतः शास्त्रार्थ का विषय नहीं बनना चाहिए। जहां तक सम्भव हो उसकी सीधी और सरलानुभूति के लिए प्रयास होने चाहिए। भौतिकवाद की चकाचौंध में लोग धर्म को भुलाते जा रहे हैं। मार्क्स ने घोषणा कर डाली थी कि धर्म 'अफीम' है; एक मादक द्रव्य है; वह व्यक्ति में उन्माद उत्पन्न करता है। साम्यवादी देशों ने धर्म के उन्मूलन का प्रयत्न भी किया। यह सब, स्पष्ट धर्म के शरीर पर घटित हो रहा है। धर्म के शरीर को बेशक भुलाया जा सकता है। पर उसके सार-तत्त्व को दर गुज़र कर पाना असम्भव है। जिसके प्रति श्रद्धा होती है, वह मनुष्य के लिए मादक बन जाता है। राष्ट्रनिष्ठ लोगों के लिए क्या राष्ट्र मादक नहीं बनता? भाषानिष्ठ लोगों के लिए क्या भाषा ही मादक नहीं बन जाती है? तब धर्म में भी कोई मादकता मौजूद हो सकती है, इस सम्भावना को हम क्यों नकार दें? मादकता उसमें है। पर वह उसके शरीर में है, आत्मा में नहीं। धर्म का शरीर है सम्प्रदाय और उसकी आत्मा है अध्यात्म। आत्मा की प्राप्ति साधना द्वारा होती है। अतः धर्म के निरुपणार्थ हम जिस भाषा या शैली का प्रयोग करें वह सहिष्णुता एवं सौहार्द का पुट लिए होनी चाहिए। उस भाषा को पढ़ते सुनते ऐसा आभास हो कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की तर्फ़ ले जाने वाले अनेक मार्ग हैं। सच्ची शान्ति महज़ मार्ग पर आरूढ़ होने से सुलभ नहीं होगी वरन् धर्म की अनुभूति से मिलेगी। हम निज भाव निधि दूसरों के समक्ष रखना चाहते हैं और दूसरों की भाव निधि को स्वयं देखना भी चाहते हैं। आदान-प्रदान की यह प्रवृति मानव की सहज वृत्ति है। भावों और विचारों का सहज सुलभ साधन अंततः भाषा ही तो है। जिस समय हम वार्तालाप में तल्लीन होते हैं, उस समय हमारे मानसिक जगत में भाषण की क्रिया कार्य कर रही होती है। भाषा वैज्ञानिकों ने इसे भाषा का मनोवैज्ञानिक अथवा मनः क्षेत्रीय रूप कहा है। उच्चारित वाणी का रूप भौतिक है। मन में निहित वाणी दिखाई नहीं देती मगर अनुभव में जरूर आती है। वहां पर उसके शब्द एवं अर्थ दोनों मौजूद रहते हैं। एक रूप के लिए जो शब्द मन में संचरित होता है वह दूसरे रूप वाले शब्द से पृथक रहता है। इस अलगाव के संग वहां तारतम्य भी बना रहता है। भाषा वहां स्वरित बेशक नहीं हो, मगर स्पंदित और क्रियाशील अवश्य होती है। बाह्य भाषा उसी मानसिक क्षेत्र में स्पंदित वाणी का मुखरित रूप है। भाषा का एक विशेष धर्म है, उसका व्यक्ति सापेक्ष होना। अतः व्यक्ति को सदैव इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि उसकी भाषा

खास करके, धर्म के संदर्भ में कटु या अमैत्रीपूर्ण न लगे। वह जो कुछ कहे या लिखे उसका मर्म प्रेम पगा होना चाहिए। उसके बोल मीठे लगें। आखिर सभी चाहते हैं कि कोई हमारे आंसुओं को पोंछे, हमारी आहों को दुलराए, और हमारी हंसी में अपने हृदय के उल्लास को घोल दे। हमारी यह पावन साध है कि हमारी सांसें भविष्य का अभिनव शृंगार करें। इस सबकी सम्पूर्ति हम भाषा के माध्यम से कहेंगे। यह माध्यम भाषा का लिखित रूप होगा। हमारी समस्त सांस्कृतिक चेतना हमारी सभ्यता का समस्त रूप, या कहें कि हमारी यात्रा की जय विजय की कहानी भाषा के लिखित रूप में सुरक्षित रहेगी। हमें निजी ज्ञान की मंजूषा अपनी भावी संतति को सौंपनी है। उसका कलेवर तो भाषा ही होगी न। आवश्यकता है वह भाषा जहां सरल, सुबोध और सुपाठ्य हो, वहां वह सत्यनिष्ठ और प्रेममूलक भी हो।

स० लो० सम्पर्क अधिकारी
किन्नौर, कल्पा।
(हिमाचल प्रदेश)

हिमाचल प्रदेश में मामा शब्द की लोकप्रियता

–दुर्गादत्त शास्त्री

हिमाचल में मामा शब्द बहुत ही लोकप्रिय है। यह यद्यपि संस्कृत के मातुल शब्द से बिगड़ कर बना है परन्तु संस्कृत में इस शब्द का अपना भी कम महत्त्व नहीं। सर्वप्रथम संस्कृत के आधार पर मामा शब्द का विश्लेषण करना ही उचित होगा। 'मा' नाम संस्कृत में लक्ष्मी का है। लक्ष्मी की द्विरुक्ति से ही मामा शब्द बना है। अर्थात् 'लक्ष्मी-लक्ष्मी' जैसे हर मनुष्य को लक्ष्मी से प्यार होता है इसी प्रकार मामा से भी हर व्यक्ति को प्यार होता है। मामा पर मनुष्य का विशेष अधिकार रहता है। मामा से भानजों को कुछ न कुछ प्राप्त होता ही रहता है इस लिए 'मा' लक्ष्मी से मामा का सम्बन्ध जोड़ना युक्तिसंगत ही होगा। जैसे लक्ष्मी को देख कर मनुष्य विकसित होता है उसी प्रकार मामा को देख कर भी हर व्यक्ति का मन प्रफुल्लित हो जाता है।

'मा' का अर्थ निषेध भी होता है जैसे :–

'मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः।'

'मा मा' 'मत मत' अर्थात् मामा से आगे कोई बड़ा प्यारा सम्बन्ध नहीं होता है। सम्बन्ध के दृष्टिकोण से यहां एक विराम जैसा ही लग जाता है।

'मा' का आधार मा और माङ् धातुएं हैं जिन का अर्थ है मापना। मा–माने, माङ्–माने। जो सम्बन्ध को अपने महत्त्व से मापता है अर्थात् सम्बन्ध के महत्त्व को भली भान्ति पहचानता है या निभाता है वही मामा है।

फिर 'मा' का प्रयोग द्वितीया के एक वचन में 'माम्' के लिए भी होता है और 'आ' का अर्थ है समन्तात् अर्थात् चारों ओर से। जो मुझ को अर्थात् भानजे को चारों ओर से सम्भालता है या संरक्षण देता है वही मामा है।

फिर 'आ' का अर्थ अनुकम्पा भी होता है। जैसे – **'आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्यऽनुकम्पायां समुच्चये'** जो मा 'माम्' मुझ को अनुकम्पा से देखता है वही मामा है।

फिर कुछ और गहराई में जाने पर इसका सन्धिच्छेद ऐसे करना होगा 'मा+अमा' मा का अर्थ निषेध और अमा का अर्थ है अमावस्या जिस में घुप अन्धेरा होता है। अर्थात् जहां अन्धकार का निषेध है केवल प्रकाश और प्यार ही है वही मामा है।

फिर 'म' वर्ण मंगल का वाचक है। 'आ' का अर्थ ऊपर दर्शाया गया है। तो सन्धिच्छेद होगा 'मा+आ, म+आ' अर्थात् जो सब ओर से मंगल ही मंगल का दायक है वही मामा है।

मामा का महत्त्व इस बात से भी परखा जाता है कि बच्चे की जन्मकुण्डली से जहां अन्य भावों से माता, पिता, भाई आदि के लिए बच्चे का शुभ अशुभ होना देखा जाता है वहां छठे भाव से मामा के लिऐ बच्चे का शुभ अशुभ होना परखा जाता है **'षष्ठे तु मातुलः स्मृतः'** अर्थात् छठे भाव से मामा के लिए परख करनी चाहिए।

षष्ठे सौम्याः स्थिताः यस्य स भवेन्मातुलनन्दनः।
अस्मिन्नेव स्थिताः पापाः मातुलहानिदाः मताः॥

अर्थात् छठे घर में शुभ ग्रह हों तो बालक मामा के लिए अच्छा होता है परन्तु यदि इसी घर में पापी ग्रह हों तो मामा के लिए बालक क्रूर होता है।

मामा के महत्त्व को इस बात से भी परखा जा सकता है कि सैंकड़ों मनुष्य ऐसे देखने में आते है जिन की आकृति पिता से मेल न खा कर उनके मामा से मिलती है।

एक छोटी सी कहावत यहां उद्धृत करना चाहूंगा जिससे मामा की लोकप्रियता या महत्त्व सुगमता से समझा जा सकेगा। दो बच्चे आपस में झगड़ते हैं, एक दूसरे को पकड़ लेता है। दूसरा अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता है परन्तु पहले की पकड़ इतनी मजबूत है कि दूसरा उससे छूट नहीं सकता। वह छटपटाता है तो पहला अपनी पकड़ को और भी मजबूत करके कहता है "बच्चू ! जाणां कुतूं मामयां दे ?" इस कहावत में मामा की लोकप्रियता के छिपे सम्पूर्ण रहस्य को ढूंढा जा सकता है। अर्थात् कठिनाई से निकल कर यदि कहीं शरण मिल सकती है तो मामा का घर ही है। फिर एक कहावत और भी प्रचलित है :—"मामया दे जांह्गे घियो घड़ोलू खांगे' अर्थात् मैं मामा के घर जा कर घी का घड़ा खाऊंगा। बात भी सत्य है। मामा के घर में जो खाने-पीने की स्वतन्त्रता होती है वह भला दूसरे सम्बन्धियों के घर में कैसे उपलब्ध हो सकती है। कई ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि बच्चे माता-पिता के प्यार को ठुकरा कर पढ़ने-लिखने के लिए मामा के घर में ही चले जाते हैं और वहीं के निकटवर्ती किसी स्कूल में अपनी शिक्षा को पूरा करते हैं।

अपने मामा पर बच्चों को जो गर्व (फखर) होता है वह अन्य किसी भी सम्बन्धी पर नहीं होता है। मामा जब कभी घर पर आता है तो बच्चे उछलते कूदते उससे लिपट जाते हैं। ऐसे जब कभी बच्चों ने मामा के घर जाना हो तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद वह किसी मेले में जा रहे हों। कुछ लोगों ने अनुभव किया होगा, कोई पांच वर्ष से छोटा बच्चा जिसने तुतलाना सीख लिया हो, अपनी मां की गोद में है, मां कहीं रास्ते में जा रही है, अकस्मात् कोई आदमी सामने से आ रहा है, बच्चे के मुंह से अनायास निकल जाता है :—"मा मा"। माता उसे पुचकारती है और चूम लेती है हां "मामा"। संभवतः बच्चे के तुतलाने में उसके हृदय में भाई का सोया पावन प्यार जाग गया होगा।

मामा शब्द मधुर बड़ा जग में सब को भाय।
मामा जी की गोद में स्वर्ग सा सुख आय॥

अपनी बहन के जब कोई सन्तान पैदा होती है तो मनुष्य को मामा की पदवी मिल जाती है। बहन के घर से उसके एक नये नाते (घनिष्ठ सम्बन्ध) का प्रारंभ हो जाता है। जिस घर में उसे

साला पुकारा जाता था वहां वह अब साला न होकर मामा है। साला शब्द से छुटकारा मिल जाता है। यह शब्द गौण होकर रह जाता है और मामा शब्द को प्रधानता मिल जाती है। जैसा ऊपर की व्युत्पत्ति में दर्शाया गया है कि मामा मंगल का द्योतक है। अतएव बहन के घर में उसके किसी भी बच्चे का शुभ संस्कार मामा की अनुपस्थिति में नहीं किया जाता है। मामा के हाथ से ही शुभ संस्कार करवाए जाते हैं। हिमाचल के लोक गीतों में मामा का बहुत ही गुणगान है। मामा के लिए लोक-गीतों में गाली भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित है जो कि शुभ संस्कारों में मामा को लक्ष्य करके गाई जाती है।

सर्वप्रथम बच्चे का जब नामकरण संस्कार किया जाता है जिसे हिमाचल में 'गूंत लेना' कहते हैं उस में मामा की उपस्थिति बहुत ही आवश्यक समझी जाती है। बहन जब बच्चे को गोद में लेकर आंगन में गोमूत्र पान के लिए बैठती है तो बच्चे का मामा छतरी तान कर छाया करता है। इस का अभिप्राय: है कि मामा बच्चे के संरक्षण की जिम्मेवारी लेता है। यह प्रथा हिमाचल विशेष कर कांगड़ा में इतनी प्रचलित है कि यदि वास्तविक मामा न हो तो कल्पित मामा बनाया जाता है। इस समय बच्चे को मामा द्वारा लाए गए वस्त्र ही पहनाए जाते हैं। मुंडन संस्कार हो चाहे कर्णवेध हो, मामा के बिना कुछ चलता नहीं। यज्ञोपवीत संस्कार में ब्रह्मचारी की वही खड़ाऊं चोला, धोती, यज्ञोपवीत पहनाए जाते हैं जो मामा लाया हो।

विवाह संस्कार में मामा का महत्व पूर्ण विकसित रूप से सामने आ जाता है। विवाह से प्रथम ज्यों ही मामा लोग सामने आते दिखाए देते हैं तो स्त्रियां गाना प्रारम्भ करती है :

उच्चें चढ़ि के देख लाड़या मामे तेरे जे आए

हिन्दी रुपान्तर : देखो दुल्हा प्यार से मामा अति दूर।
स्वागत इनका हम करें सब ही चलो जरुर।

ऐसे लोकगीत की धुन के साथ परिवार के सदस्य मामा की अगवानी करते हैं। फिर विवाह का सबसे प्रथम कार्य शान्ति पूजन या शान्तिहोम होता है जिसे कांगड़ा में प्राय: लोग 'सांद' कहते हैं। शांति पूजन में मामा का होना अत्यावश्यक समझा जाता है। यही नहीं शान्तिहोम में जिस जल का प्रयोग किया जाता है उसे मामा ही बौड़ी या कुंएं से भर कर लाता है। ज्यों ही मामा भानजे या भानजी को लेकर शान्तिपूजन में बैठता है, स्त्रियां हास्य विनोद में लोक गीत की धुन छेड़ देती हैं :

दूरों चली के मामा आया सांद-सांद पुकारदा।
आ जी मामा बैह जा पटड़ी, बैहजा पटड़ी खोल गठड़ी सारी सांद भराणी ऐ।

हिन्दी रुपान्तर : शान्तिहोम चिन्ता लगी मामा दौड़े आय।
शुभ शान्ति के यज्ञ में थैली भी खुलवाय।
आओ मामा शान से बैठो पटड़ी आन।
घी की आहुति डाल दो बढ़े आपका मान।

फिर कुछ ही क्षणों के अनन्तर लोक गीत में मामा पर मधुर गाली की बौछार :

पैसा–धेला मुकी गिया मामें दा मुंह सुकी गया।

पैसें धेलें गई ऐ टोट निकल मामा बेहड़े छोड़।
मामियां बेची पैसा धेला खड़ा होया मामें दा मुंह हरा होया॥

हिन्दी रुपान्तर : पैसा-धेला खतम है मामा भया उदास।
मामा ! मामी बेच दो आओ हमारे पास।

इन मिठास भरी गालियों को सुन कर मामा के हृदय में कैसे गुदगुदी पैदा होती होगी। इसका अनुभव मामा की पदवी पाने वाले महानुभावों को ही होगा क्योंकि गुड़ का स्वाद वही बता सकता है जिसने गुड़ खाया हो।

शान्ति होम की समाप्ति पर वर को स्नान करवाया जाता है। मामा तोरन द्वार के पास पानी का कुँभ लेकर खड़ा होता है। उसकी बहन (वर या कन्या की माता) कुछ सुहागनें तथा एक कन्या दोने में उससे पानी लेकर वर या कन्या के पैरों पर उडेलती हैं। इस प्रथा को कांगड़ा में 'वरैड़ी भरना' कहते हैं। उस समय मामा के लिए एक बहुत ही मधुर लोक गीत गाया जाता है :

भली कीती तिनीं मामें चुढ़ुएं फलियें खुआ लुआया है।
लाया है, लुआया है, भैनड़ पाणियें आई ए।
भर–भर मामा शीस घड़ोलू भैनड़ पाणियें आई ऐ।
मामा तां है राजे दा बेटा मामी तेहरोताली है।

हिन्दी रुपान्तर : धन्य धन्य मामा भये निकट पिपाऊ लाय।
बहन का उपकार है दूर न जाने पाय।
पानी भरने के लिए बहन पियाऊ पास।
सिर पर धरो घड़ा भरा पूरो उसकी आस।
मामा राजकुमार है मामी रंक समान।
पर मामी की बात को लेते सब ही मान।

इस प्रकार हास्य विनोद भरे लोक-गीतों में मामी-मामी की गूंज रहती है। कुछ क्षणों में मामी का मामा से भी बढ़ कर सत्कार होता है। एक लोक गीत :

अज किधर गईयां वे लाड़या तेरियां मामकियां।
खादे थे भल्ले जम्मे थे जल्हे,
अज जल्हयां खला रहियां बे लाड़या तेरियां मामकियां।

हिन्दी रुपान्तर : बोलो दुल्हा, है कहां मामी तुमरी आज।
छिपती–छिपती हैं कहां क्या उन्हें है लाज।
जल्हे जन्मे थे उन्हें भल्लों के परिणाम।
उनको ही खेला रही रखतीं नव–नव नाम।

और मामिया इन लोक गीतों को सुन-सुन कर खिड़-खिड़ हंसती हैं, आनन्द लेती हैं।

फिर तोरन द्वार के पास ही बहन अपने भाई (मामा) को सत्कृत करती है। तमोल आदि भेंट करती है। शान्तिहोम 'सांद' के लिए गोबर का चौका लगाना मामा-मामी का काम है। दुल्हा के लिए सेहरा मामा की ओर से ही आता है। इसी प्रकार कन्या के विवाह में वेदी मामा के घर से आती है। वेदी में चौका लगाना मामा मामी का काम है। कन्या के लिए बालू तथा चूड़ा मामा की ओर से ही होता है। मामा चाहे कितना भी निर्धन क्यों न हो, इन वस्तुओं का प्रबन्ध उसे करना ही होता है। क्योंकि मामा की ओर से कन्या को इनके पहनाए जाने में बड़ा शुभ शकुन समझा जाता है। तोरन और वेदी को मामा ही समेटता है। यही नहीं, शांति और वेदी में जो हवन किया जाता है उसको समेटना और किसी जलाशय तक पहुंचाना भी मामा का ही काम है। 'सांद' और 'वेदी' में पुरोहित की दक्षिणा भी मामा को ही देनी होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमाचल में मामा शब्द बहुत ही लोकप्रिय है। अपनी बहन के घर भानजा-भानजी के शुभ संस्कारों में यही मुख्य भूमिका निभाता है। इसमें हमारी हिमाचली संस्कृति का बड़ा रहस्य छिपा हुआ है।

अब पाठकों को आशंका होगी कि यदि मामा का सम्बन्ध इतना ही मधुर एवं मंगलयम दायक है तो श्रीकृष्ण ने अपने मामा कंस को क्यों मारा था। इतिहास को उद्धृत करते हुए मुझे इस आशंका का निवारण करना ही होगा। कंस श्रीकृष्ण का सगा मामा न था क्योंकि कंस उग्रसेन के घर जन्मा था और श्रीकृष्ण की माता देवकी उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री थी। यदि सगा मामा न था फिर भी मामा तो था ही। तो कंस को श्रीकृष्ण जी ने क्यों मारा। वास्तव में कंस उग्रसेन का पुत्र भी न था। इसीलिए मैंने पीछे लिखा है कि कंस उग्रसेन के घर जन्मा था। वह उग्रसेन का वीर्यपुत्र न था।

एक बार उग्रसेन की पत्नी पवन रेखा अपनी सखी सहेलियों के साथ वन में विहार करने गई थी। दैवयोग से वह अपनी सहेलियों से बिछुड़ गई। वन में अकेली भटक रही थी। उस समय एक दुर्मलिक नाम का दैत्य वहां घूम रहा था। उसकी दृष्टि पवनरेखा पर गई और वह उस पर इतना मुग्ध हो गया कि कामुक अवस्था में आ गया। उसने सोचा कि यह मेरे इसी रूप में तो मेरे अनुकूल न होगी। क्यों न हो कि मैं उग्रसेन का रूप ही धारण कर लूं। दैत्य मायावी होते थे। उसने उग्रसेन का रूप बनाया और पवन रेखा के सामने खड़ा हो गया। पवन रेखा बहुत विस्मित हुई कि मेरा पति यहां कैसे आ गया। दैत्य (उग्रसेन के रूप में) ने कहा कि मैं तुझे ढूंढ़ता यहां आया हूं क्योंकि आप बड़ी देर से आई हो और घर न लौटी हो। इसी चिन्ता में मैं इधर आ गया हूं। मैं इस समय इतना प्रेमविह्वल हूं कि तुझ से रमण करना चाहता हूं। पवनरेखा बहुत घबराई। उसने पति 'दैत्य' से प्रार्थना की कि इस समय दिन है और यह जंगल है। आप मेरे पति हैं परन्तु फिर भी मैं लाज के मारे मर रही हूं दैत्य न माना और उसने उग्रसेन के रूप में पवनरेखा का शील भंग कर दिया। जब उसने अपना रूप बदला तो पवनरेखा बहुत दुःखी हुई। वह शाप भी देती तो क्या देती। असुर की योनि में तो वह पहले ही था। पवनरेखा घर चली आई परन्तु उसने इस घटना को अपने पति उग्रसेन से न बताया। उसके पहले कोई संतान न थी। उस दैत्य के वीर्य से ही कंस का जन्म हुआ था जिसे केवल पवन रेखा ही जानती थी। कंस के बाद उग्रसेन और पवनरेखा के सात पुत्र हुए।

कंस जन्म से ही बहुत धूर्त या दुष्ट था। उसकी सब वृतियां राक्षसों की थीं। वह अपनी बराबरी के दूसरे बच्चों को गुफाओं में बन्द कर देता था, कइयों को मार देता था। बचपन में ही उसके उत्पात से लोग भयभीत रहने लगे थे।

उग्रसेन के भाई देवक की कन्या का नाम देवकी था। देवकी जब विवाह के योग्य हुई तो देवक ने उसके विवाह के लिए अपने तथाकथित भतीजे कंस से भी परामर्श किया कि यह लड़की किसको दी जाए। देवक ने अपनी कन्या को शूरसेन के पुत्र वासुदेव को देने का निर्णय किया था। कंस ने भी इसका अनुमोदन किया। देवकी का विवाह धूमधाम से हुआ। जब देवकी ससुर घर को विदा हुई तो कंस प्रसन्नता से स्वयं उसके रथ को हांक रहा था। इतने में आकाशवाणी हुई कि "अरे कंस ! तूं जिस बहन के विवाह में इतनी प्रसन्नता मना रहा है इसी के गर्भ से जन्मे आठवें पुत्र के हाथ से तेरी मृत्यु होगी" इस आकाशवाणी को सुनकर कंस भारी क्रोध में आ गया और रास्ते में देवकी को जान से मार देने केलिए तैयार हो गया। वासुदेव ने कंस से अनुरोध किया वह देवकी के जो भी बच्चे पैदा होंगे उन्हें उसके पास पहुंचा दिया करेगा और वह अपनी सुरक्षा के लिए उन बच्चों को मार दिया करे। देवकी को मारने से क्या लाभ होगा। इस ढंग से वासुदेव ने देवकी की जान बचा ली। फिर कंस के कारागार में ही किस प्रकार कृष्ण का जन्म हुआ, कारागार के कपाट खुले, वासुदेव ने कृष्ण को रातों ही रात यमुना पार नन्द–यशोदा के घर पहुंचा दिया। यह सारा इतिहास सर्वविदित है। अतः इसकी पुनरावृत्ति से मैं पन्नों का भार न बढ़ाना चाहूंगा। मैंने मामा के महत्त्व एवं मधुर सम्बन्ध की जो पीछे चर्चा की थी उसमें कंस के नाम से किरकिरी न आ जाए। उसको दूर करना ही मेरा प्रयोजन था। पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि कंस कृष्ण का मामा न होकर एक दैत्यवीर्य से उत्पन्न असुर था और श्री कृष्ण के हाथ से उसका मारा जाना ही विधि का विधान था।

अब मामा के मधुर सम्बन्ध को पाठकों के हृदय में पुनः सरस बनाने के लिए निम्न दोहों से इस आलेख को समाप्त करता हूं :—

मामा जी के सदन में बहे रस की धार।
मामा जी को देखकर खुशियों की बौछार ॥१॥

मामा मामा कहत ही मन खिलता ज्यों फूल।
मामा जी के मान में कभी न होती भूल ॥२॥

मामा जिसका है खड़ा उसको क्या परवाह।
मामा जी के पास ही सबकी पूरी चाह ॥३॥

मामा तन-मन देत है मामा धन भी देत।
मामा जी के हाथ से होता सबका हेत ॥४॥

मामा रक्षक है बड़ा मामा पालन हार।
सम्बन्ध सुखद है बड़ा सम्बन्धों का सार ॥५॥

मामा सुख-दुख में सदा देता अपना साथ।
मामा जग में सच कहा अनाथन का नाथ ॥६॥

मामा जिसके हैं नहीं जग में है वह दीन।
अरे विधाता मत करो जन को मामा हीन ॥७॥

ग्राम, डाकघर नलेटी, पिन-१७७१०४
द्वारा नैहरनपुखर, तहसील देहरा,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

हिमाचल लोक विश्वासों में भूत प्रेत

–हरिकृष्ण मुरारी

भूत प्रेतों की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसके विषय में अनेक प्रकार की धारणायें मिलती हैं। जिस प्रकार मनुष्य में जाति, लिंग, वर्ण आदि विशेषताएं होती हैं और जिस के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है उसी प्रकार भूत-प्रेतों का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। हम इन्हें सर्वप्रथम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

१. नर भूत-प्रेत

२. मादा भूत-प्रेत

१. नर भूत-प्रेत :

इनमें पुरुष जाति में आने वाले सभी भूत-प्रेत आ जाते हैं। वैसे तो नर भूत-प्रेत अनेक हैं परन्तु चर्चित भूत-प्रेत कुछ एक ही हैं, जिन्हें प्रायः सभी जगह सुना गया है। जैसे– भूत छिहापड़ा, जल भीर, बताल, अद्धमसाणिया, मामा पहाड़िया या सीन्डू इत्यादि भूत-प्रेत अधिक चर्चित हैं।

भूत :

कुछ लोग इसे प्रेत भी कहते हैं। कहते हैं, "जब कोई कंवारा व्यक्ति मर जाता है तो वह भूत योनि प्राप्त कर लेता है। यह मूलतः बवण्डर के रूप में दिखाई देता है। यह बहुत विशाल आकार का होता है अर्थात् बड़े-बड़े दान्त, लम्बी-लम्बी टांगें एवं बड़े-बड़े हाथ होते हैं। इसकी चोटी (बोदी) बहुत लम्बी होती है जिस पर आग जलती रहती है, रंग काला तवे जैसा होता है। इसके शिकंजे में जो भी आता है, उसे उड़ा कर दूर ले जाता है और अन्ततः मार कर फेंक देता है। कभी-कभी गर्मियों की दोपहर को भी भूत दिखाई देता है ऐसी लोगों की धारणाएं हैं।

छिहापड़ा :

यह प्रायः रात के १२ बजे से ४ बजे के मध्य सुनसान स्थान पर रास्ते के मध्य सफेद चादर ओढ़े मिलता है। कभी-कभी उसका आकार बांस जितना लम्बा भी हो जाता है। यह पूर्ण रूप से सफेदपोश होता है जिससे इसकी सूरत का पता नहीं चलता। केवल सफेद मोटा खम्भा सा प्रतीत होता है।

जल भीर :

यह शमशान घाटों, नदियों एवं नालों के किनारों पर नर कंकाल की सूरत में पाये जाते हैं। प्रायः आधी रात के समय जलती हुई लकड़ियों को लेकर नृत्य करते दिखाई देते हैं।

बताल :

यह प्रायः पानी के पास ही रहता है। इसमें रूप बदलने की अलौकिक शक्ति होती है। कभी मछली बन जाता है, कभी बिल्ला तो कभी नेवला। इसे अधिकतर बिल्ले के रूप में ही देखा गया है। कभी-कभी यह स्त्रियों के गर्भ में पहुंच एक नन्हें शिशु के रूप में भी जन्म ले लेता है। ऐसी घटनाएं अक्सर घटती रहती हैं। ऐसे बच्चे की सूरत बहुत ही भयानक होती है। नाक तो बिल्कुल होती ही नहीं केवल दो छिद्र होते हैं। आंखों में बड़ी तेज चमक होती है और दान्त भी होते हैं। ऐसे बच्चे प्रायः मरे हुए ही उत्पन्न होते हैं परन्तु कुछ एक जीवित भी होते हैं। लेकिन कुछ काल उपरान्त मर जाते हैं। ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में प्रायः कई बार सुना गया है कि अमुक स्त्री ने बताल को जन्म दिया।

अद्ध मसाणियां :

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'आधा मसाण' अर्थात् आधा भूत। इसका आधा भाग मानव और आधा भाग कंकाल जैसा होता है। इसे प्रायः इसी रूप में देखा गया है। कभी-कभी बिना सिर के भी देखा गया है। इसके चंगुल में आने पर बचने की कोई सम्भावना नहीं रहती। ऐसी लोगों की धारणाएं है।

मामा पहाड़िया अथवा सीन्डू :

इसे दो रूपों में माना गया है –'देवता तथा भूत'। कुछ लोग इसकी मनौति कर लेते हैं जिस से इसका रूप देवता बन जाता है। जो लोग इसकी मनौति नहीं करते वे इसे भूत के रूप में ही मानते हैं। इसकी आवाज सीटियों जैसी होती है, इसलिए इसे सींन्डू भी कहते हैं। यह गद्दियों जैसा होता है। सिर पर लम्बी टोपी पहनता है, जो पत्तों की बनी होती है। हाथ में नरेलू (नारियल का बना तम्बाकू पीने का हुक्का) लिए प्रायः देखा गया है। कभी इसकी सूरत बड़ी भयानक होती है तो कभी बहुत ही सुन्दर नौ जवान बन जाता है।

ये हैं नर भूत-प्रेत में आने वाले चर्चित भूत-प्रेत इसके अतिरिक्त स्त्री भूत-प्रेत भी हैं जिन का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

२· स्त्री भूत-प्रेत :

जिस प्रकार पुरुष भूत-प्रेत हैं उसी प्रकार स्त्री भूत-प्रेत भी हैं। जैसे –चुड़ैल, बताली, बनास्त, डैण, जल जोगणी इत्यादि ही चर्चित मादा भूत-प्रेत हैं इसके अतिरिक्त और भी नाम आते हैं परन्तु उनके बारे में विशेष चर्चा नहीं सुनी गई।

चुड़ैल :

इस नाम से सभी परिचित हैं। इसकी उत्पत्ति के विषय में प्रायः सुना गया है कि जो गर्भवती स्त्री एवं प्रसव काल के मध्य मरने वाली प्रत्येक स्त्री चुड़ैल बन जाती है। इसके पैर उल्टे अर्थात् पंजा पीछे और खुरी आगे की ओर होती है। स्तन बड़े-बड़े लम्बे कन्धों से पीछे की ओर लटकते हैं। लम्बे-लम्बे बाल फैले होते हैं। कभी-कभी बड़ी सुन्दर स्त्री बन जाती है तो कभी इतनी भयंकर कि दृष्टि में आते ही आदमी बेहोश हो जाता है।

बताली :

यह बताल की मादा होती है। जिस प्रकार बताल रूप बदलता है उसी प्रकार यह भी कभी बिल्ली, कभी मछली, कभी नेवली बन जाती है। इसका निवास नदी एवं नालों में होता है।

बनास्त :

यह भी एक प्रकार की चुड़ैल ही होती है। कई बार कहते सुना गया है कि अमुक स्थान पर मत जाना वहां बड़ी भयानक बनास्त रहती है।

डैण :

इस रूप को स्त्रियां मंत्र सिद्धि द्वारा प्राप्त कर लेती है। मंत्र शक्ति से वह रूप बदल कर गिद्धें बन जाती हैं तथा अनेक प्रकार के कुकर्म करती हैं। कहते हैं कि—डैणें मंत्र द्वारा रीछों से काम करवाती हैं। वह प्रत्येक वस्तु को वश में कर लेती हैं।

जल जोगण :

अर्थात् जल में निवास करने वाली प्रेतनी। इसको पंख भी होते हैं अर्थात् परियों की तरह उड़ भी सकती हैं।

ये तो थी स्त्री भूत। इसके अतिरिक्त और भी नाम हैं परन्तु उन्हें इतना महत्व नहीं दिया जाना जितना इन्हें दिया जाता।

जिस प्रकार मनुष्य में लिंग वर्ण जातियां होती हैं उसी प्रकार भूतों में भी होती हैं। कहते हैं कि जो नीच जाति का भूत अथवा भूतनी होगी वह बड़ी दुष्ट होती है। उच्च जाति वाले भूत अथवा भूतनी इतने दुष्ट नहीं होते।

ये थे भूत-प्रेत जिन पर हिमाचल का जन-जीवन विश्वास करता आया है और अब भी कर रहा है।

इस विषय पर हम कहां तक सहमत हैं, नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब तक हमें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलेगा हम मौन रहेंगे।

चिन्तन कुटीर रैत
तहसील व जिला कांगड़ा
(हिमाचल प्रदेश)

सांस्कृतिक पर्व – लोहड़ी

–सुदर्शन डोगरा

लोहड़ी हिन्दुओं का एक अत्यन्त प्राचीन, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पर्व है। हमारे प्रदेश में लोहड़ी को लोग विशेष उत्साह एवं श्रद्धा से मनाते हैं। माघ का महीना दान, नाम एवं स्नान के लिए अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस मास की पवित्रता एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए गोस्वामी तुलसी दास जी राम चरित मानस के बालकाण्ड में लिखते हैं :—

माघ मकर गति रवि जब होई। तीरथ पतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेणीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी॥
× × × ×
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुण गाहा॥

माघ मास में जब सूर्य मकर राशि पर आता है तब तीर्थ राज प्रयाग में स्नान करने हेतु देवता, मनुष्य, दैत्य तथा किन्नर लोगों के समूह आते हैं जो कि आदर पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं तथा परस्पर हरि के गुणों की गाथाओं को कहते तथा सुनते हैं। इस से स्पष्ट हो जाता है कि माघ मास में स्नान, दान एवं भजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

हिमाचल प्रदेश में लोहड़ी मनाने की तैयारियां एक मास पूर्व ही आरम्भ कर दी जाती हैं। पौष मास की संक्रांति के बाद गांव के लड़के एवं लड़कियां टोलियां बनाकर लुकड़ियां (इस मास में गाये जाने वाले विशेष गीत) गाते हैं। प्रदेश के किसी भाग में ये लुकड़ियां दोपहर बाद तथा किसी भाग में सूर्य अस्त के बाद गाई जाती हैं। लड़कियों द्वारा गाई जाने वाली लुकड़ियों के बोल इस प्रकार से हैं।

सेर की कणियां छक्कुए च पांदी, सेर की............
गांह मिल्ला देर परोहणा वो मेरिया छक्कुआ
गांह मिल्ला देर............
आहः देरा तेरा आदर करिये, आहः देरा तेरा आदर करिये
चौलां दा बबरू खुआणा वो मेरिया छक्कुआ
चौलां दा............
सेर की छलियाँ छक्कुए च पांदी, गाँह मिल्ला जेठ परोहणा
वो मेरिया छक्कुआ। गांह मिल्ला............
आहः जेठा तेरा आदर करदी, छल्लियां दा टुकड़ा खुआणा

वो मेरिया छक्कुश्रा
सेर की कणक में छक्कुए च पांदी, सेर की............
गांह मिल्ला कन्त परोह्णा वो मेरिया छक्कुश्रा
गांह ....
श्रा कान्ता तेरा श्रादर करदी,
कणका दा परौंठा खुश्राणा वो मेरिया छक्कुश्रा ....

एक अन्य लुकड़ी के बोल इस प्रकार से हैं :

पैंसे दा मैं कद्दू मंगादी, पैंसे दा मैं कद्दू मंगादी,
टुकड़े किते छे-चार श्रडिये, लगा सुश्राद मेरे कद्दूए दा।
लई दराटी चीरना बैंठी, लई दराटी चीरना बैंठी,
चीरी ने भरिया थाल् श्रड़िये, लगा सुश्राद मेरे कद्दूए दा।
चीरी चारी तुड़कें पाया, चीरी चारी तुड़कें पाया,
मुसक चली बजार श्रड़िये, लगा सुश्राद मेरे कद्दूए दा।
जां मैं कद्दूए खाणां बैंठी नणद खड़ी दुश्रार श्रड़िये,
लगा सुश्राद मेरे कद्दूए दा।
बैंह नणदे इस तू भी खायां, लैंह ....
गल्ल न कढियां बाहर श्रड़िये, लगा सुश्राद मेरे कद्दूए दा।
फिरी मैं कद्दूए खाणा बैंठी, सस्सी खड़ी दुश्रार श्रड़िये,
लगा सुश्राद ....
चुकी ने हंडू बाहर सुट्टिया, ठीकर होई गें चार श्रड़िये,
लगा सुश्राद मेरे ....

लुकड़ी गा चुकने बाद लड़कियां कहती हैं :

देह माई दाणे, होर घर भी गाणे।

लड़कियों की भान्ति ही लड़के भी टोलियों में घर-घर जा कर तुक्कबन्दी सुना कर दाने मांग कर लाते हैं :

जट्टी-मट्टी घेरनी, जट्टे नें नी छेड़नी।
जट्ट जाई पकारिया, जट्टें माधो मारिया।
माधो श्रन्दी छतरी, निकलिया खतरी,
खतरियें श्रन्दा बाण, निकलिया तरखाण,
तरखाणें घड़ी डोई, निकलिया सोई,
सोइयें सीता टोपू, निकलिया मियां घोपू।

तुक्कबन्दी सुना चुकने के बाद वे जोर से कहते हैं :

श्रटुश्रा भई श्रटुश्रा ! खोल माई बटुश्रा।

यदि कोई दाने न दे तो कहते हैं :

हुक्का भई हुक्का, एह घर भुक्खा ।

इस प्रकार पूरा पौष का मास लड़के और लड़कियां दाने मांग कर अन्न का खूब भण्डार एकत्रित कर लेते हैं तथा उस अन्न को बेचकर लोहड़ी मनाने हेतु चिड़वे, रेवड़ियां तथा गच्चक खरीद कर रख लेते हैं तथा शेष रुपयों से अपने लिए नए कपड़ आदि बनवा लेते हैं। पौष मास के अन्तिम दिन को लोहड़ी का मसान्त कहते हैं तथा पौष मास को "लुकड़ियों का महीना" कहा जाता है।

लोहड़ी के मसान्त को प्रत्येक घर में बहुत उत्साह एवं उल्लास से मनाया जाता है। प्रात: काल से ही गांव में प्रत्येक घर में सफाई व झाड़-पौंछ का काम आरम्भ हो जाता है। गाय के गोबर से लोग अपने घरों व आंगन को लीपते हैं। कुछ लोग हरा रंग डाल कर गोबर से लिपाई करते हैं। लोहड़ी का पूजन अग्नि पूजन होता है। प्रत्येक घर में अंगीठी को मिट्टी से लीप कर उसमें सफेद मिट्टी (जिसे गोलू कहते हैं) या चावल का आटा घोल कर बेल बूटे बना कर सजाया जाता है। रात्रि को घर के सभी लोग अग्नि पूजा में भाग लेते हैं तथा आग में 'तिलचोली' से हवन किया जाता है। तिलचोली में शरद ऋतु के मुख्य अन्न, फल, वनस्पतियां डाली जाती हैं जिसमें चावल, अखरोट की गिरी, खोपा, रेवड़ियां, दाख, नया गुड़ डाला जाता है। सर्व प्रथम अग्नि की जल, अक्षत, कुमकुम तथा दूध आदि से पूजा की जाती है तथा तत्पश्चात् तिलचोली से हवन किया जाता है। पूर्ण आहुति में गरी का गोला अथवा नारियल डाला जाता है। निर्धन लोग साबुत अखरोट डालकर ही काम चला लेते हैं। रात्रि को प्रत्येक घर में कई प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं जिन में चावल के आटे की चीह्लड़े (जिन्हें बबरू कहते हैं) तथा माश की दाल के पकोड़ू (भल्ले) मुख्य पकवान हैं। गेहूं के आटे से भटूरे भी बनाए जाते हैं। हवन कर चुकने के बाद अग्नि देवता को तथा अपने कुल देवताओं को पकवानों का भोग लगवाया जाता है तथा तिलचोली के प्रसाद सहित सभी में बांटा जाता है। स्त्रियां सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहन कर तथा आभूषणों से अपना शृंगार कर पकाए हुए पकवानों को अपने पास पड़ोस व सगे-सम्बन्धियों में बांटती हैं तथा घर के बड़े बूढ़ों के पांव छूती हैं।

गांव के लोग खुले स्थान में लकड़ियों का ढेर लगा कर खूब आग जलाते हैं, उसमें रेवड़ियां, मूंगफली एवं चिड़वे डाल कर हवन करते हैं तथा गीत और भजन गा कर सब का मनोरञ्जन करते हैं। आपस में मूंगफ़ली, चिड़वे व रेवड़ियां बांट कर खाते हैं। कुछ लोग आग को फांद कर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। उस रात्रि को लड़कियां लुकड़ियों के स्थान पर तिलचोली का गीत गाती हैं :

तिल चोलिये हां हां
गीगा मौलिये हां हां
गीगा जम्मिया था हां हां
गुड़ बंडिया था हां हां
अस्सां खाधा था हां हां
हाडी आया था हां हां

मूलियां लइयां थीयां हां हां
गुड़ लिया था हां हां
गद्दी आया था हां हां
खोड़ अन्दे थे हां हां
अस्सां खाधे थे हां हां
गोगा भोलिये हां हां

जिन घरों में कोई शादी हुई हो अथवा पुत्र प्राप्ति हुई हो लोहड़ी की रात को उनमें विशेष उत्सव मनाया जाता है। रात्रि को खूब नाच गाना किया जाता है। घर वालों की तरफ से छोटे बड़े लोगों में रुपये, पैसे बांटे जाते हैं।

लड़के लोहड़ी की रात को हिरण बनाते हैं। गांव के बीस तीस लड़के मिल कर हिरण का आयोजन करते हैं। दो लड़कों को हरिण की खाल अथवा किसी अन्य जानवर की खाल ओढ़ा कर तथा हरिण के सींग लगा कर हिरण बनाया जाता है। इस हिरण के पीछे चन्द्रौला (चन्द्रावली) तथा डंडू (मनसुखा) रहते हैं जो कि अपने भान्ति-भान्ति के कृत्यों व नृत्यों से तमाशा करते हुए चलते हैं। कुछ लोग मदारी तथा साधु का स्वांग बनाए टोली में शामिल रहते हैं। गाना गाने के लिए लड़कों की टोली अलग से रहती है। कुछ लड़के बाजा (ढोल नगाड़ा) बजाने तथा भारची का काम करने के लिए तैनात रहते हैं। भारची अनाज की बोरियों को उठा कर चलते हैं। इस प्रकार पूरी तरह से सज-धज कर गांव में हल्ला करते हुए हिरण प्रत्येक घर में जाता है और अपने सींगों से टक्करें मार-मार कर सब के किवाड़ खटका कर लोगों को जगाता है। हिरण में सम्मिलित सभी लड़के गाते हैं :

हिरण मंगे तिलचोली देह,
लाल गुड़े दी रोड़ी देह,
दिदी है दुग्रांदी है,
कोठें हत्थ पुग्रांदी है।

जब घर के लोग जाग जाते हैं तो प्रत्येक घर के आंगन में खूब नाच तमाशा दिखा कर हिरण मुँह मांगा इनाम लेता है। इस प्रकार रात भर हिरण की भिन्न-भिन्न गांवों से आने वाली टोलियां सब का मनोरञ्जन करती हैं। प्रातःकाल ब्रह्म महूर्त में गांव के बड़े बूढ़े निकटवर्ती तालाब, नदी व कुएं में स्नान करते हैं। प्रातःकाल ब्रह्म-महूर्त में लुकड़ियां गाने वाली लड़कियों की टोलियां राजड़े (माघ संक्रान्ति के दिन गाया जाने वाला विशेष गीत) गाने निकल पड़ती हैं जिस के बोल हैं :

अस्सां आइयां राजड़ियो, राजड़ियो
राजदुआरें आइयां भाई,
राजदुआरें आइयां।
चौलां मांह रेड़दिये, रेड़दिये

दियां माए चौलं माह – चौल माह
उप्पर पायां सक्कर भाई
उप्पर पायां सक्कर।
धीयां तेरियां राणियां, राणियां
पुत्तर तेरे ठाकर भाई
पुत्तर तेरे ठाकर।
पैरें लग्गी ठंडणी-ठंडणी
बत्त किहियां हुंडणी-हुंडणी
सिर खड़े सराल भाई
सिर खड़े सराल।
अम्बरें लग्गे तारे-तारे
इस घरें लाड़े-लाड़
लोहड़िया दा बीर भाई,
लोहड़िया दा बीर।

राजड़े गाने वाली लड़कियों का काम सूर्य उदय होने पर बन्द हो जाता है। सूर्य उदय के साथ-साथ ही प्रायः सभी घरों में लोग गर्म अथवा ठण्डे जल से स्नान करते हैं। घर का प्रत्येक सदस्य चावल तथा उड़द खिचड़ी के लिए दान करता है जिसे कुल पुरोहित स्वयं घर-घर जा कर ले आता है। लोहड़ी के दिन कुछ लोग अपनी सामर्थ्य अनुसार गरम वस्त्र, कम्बल, जूते, कांगड़ी (मिट्टी से बनी आग सेकने की बुखारची), पट्टू इत्यादि दान करते हैं। कुछ स्त्रियां जो धन खर्च करने में असमर्थ होती हैं पुराने कपड़े की गूदड़ियां (खिंधें) आदि निर्धन लोगों को ओढ़ने के लिए देती हैं। इतना ही नहीं पुआल की बनी बिन्दरियां (चटाइयां), जिन्हें कि लोग बिस्तर के नीचे बिछाने में प्रयुक्त करते हैं, किसानों द्वारा निर्धन लोगों में बांटी जाती हैं। इस प्रकार की दान वृत्ति जहां प्रदेश के लोगों की उदारता को दर्शाती है वहां उनके परोपकारी जीवन को भी उद्घाटित करती है। भले ही प्रदेश के लोग निर्धन हैं परन्तु वे दिल के धनी हैं। उनमें दान एवं परोपकार की भावना कूट कूट कर भरी रहती है।

लोहड़ी की संक्रान्ति को प्रत्येक घर में उड़द तथा रौंग की दाल डाल कर खिचड़ी बनाई जाती है। सभी लोग खिचड़ी खाने के लिए अपने सगे-सम्बन्धियों, मित्रों एवं प्रेमियों को आमन्त्रित करते हैं। देसी घी, दही, भैंस के दूध तथा भान्ति-भान्ति के अचारों के साथ प्रेम पूर्वक खिचड़ी खाई व खिलाई जाती है। खिचड़ी खा चुकने के बाद मीठे चावल परोसे जाते हैं। जोकि प्रदेश का मुख्य व्यञ्जन है। लोग प्रायः अपनी बेटियों को लोहड़ी पर दूर-दूर से बुलाते हैं। कुछ लोग जो जिमिंदारी का काम करते हैं उनकी बहुएं भैया दूज को अपने भाइयों को टीका लगाने नहीं आ सकतीं वे लोहड़ी को आकर भाइयों को टीका लगाती हैं। माता-पिता उन्हें घर जाते समय लोहड़ी की खिचड़ी स्वरूप कुछ और अन्न देते हैं। प्रायः प्रत्येक लड़की को मायके से लोहड़ी की खिचड़ी भेजी जाती है।

दोपहर के बाद गांव के निर्धन लोग घर-घर त्यौहार मांगने जाते हैं जिन्हें 'तुहारखड़ू' कहा जाता है। प्रत्येक घर से उन्हें खिचड़ी व भटूरे मिलते हैं। इस प्रकार मासान्त व संक्रान्ति को दोनों ही दिन बहुत उत्साह के साथ इस पर्व को मनाया जाता है।

प्रदेश विभिन्न भागों में जहां-जहां पवित्र तीर्थ हैं लोहड़ी को मेले लगते हैं। कुछ लोग शिमला के निकट तत्ता पानी में स्नान करते हैं तो कुछ हरिद्वार में गंगा स्नान करने जाते हैं। मनीकरण में बहुत से लोग दूर-दूर से आकर स्नान करते हैं।

लोहड़ी का त्यौहार नाम, दान व स्नान तीनों सतकर्मों का संगम है जो कि हमें अपनी प्राचीन परम्परा से मिले हैं। यह त्यौहार जहां हमारी धार्मिक भावनाओं की तुष्टि करता है वहां सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में भी पर्याप्त योगदान देता है। इस प्रकार के त्यौहार मानव को मानव से मिलाते हैं तथा जीवन की नीरसता में सरसता का प्रसार करते हैं।

अनुसंधान सहायक,
भाषा एवं संस्कृति विभाग,
जाखू, शिमला—२।

●★●

हिमाचल प्रदेश में शिवरात्रि पर्व

–वृजमोहन शिलवाल

समाज और समुदाय में प्रचलित विविध पर्व इतिहास, पुराण तथा घटना-श्रृंखलाओं से आवद्ध होकर उनकी दीर्घजीवी कड़ियां होती हैं। हिन्दुओं का शिवरात्रि पर्व, रामनवमी पर्व, कुम्भ पर्व, जन्माष्टमी पर्व, गुरु पर्व, दीपावली पर्व, होली, दशहरा, महावीर जयन्ती और बुद्ध-पूर्णिमा पर्व, मुसलमानों का ईद पर्व, मोहर्रम आदि पर्व तथा इसाइयों का क्रिशमस पर्व आदि कई पर्व हैं जो लोक में निष्ठा से प्रचलित हैं। राष्ट्रीय इतिहास में स्वतन्त्रता दिवस, गान्धी जयन्ती तथा गणतन्त्र दिवस आदि अनेक ऐसे पर्व हैं जो अपने उद्‌गम और इतिहास के स्वयं में दस्तावेज़ हैं।

हिन्दुओं की आस्तिक भावना तथा भक्तिमय सगुण-निर्गुण ईश्वरोपसना का बृहत् इतिहास, बहुमुखी विश्वास, नैतिकता सम्पन्न धार्मिक आस्था पुराण, उपनिषद तथा एकाधिक धर्म-ग्रन्थों की निधियां हैं। यों भक्ति एवं उपासना के बीज वैदिक काल में ही मानव हृदयों में अभिनिवेशित हो चुके थे, उसका उत्तरोत्तर विकास कई रूपों में अविरल होता गया। आज के स्थापित अनेक धार्मिक विश्वास, उत्सव एवं पर्व इसी के परिणाम हैं। पुराण और उपनिषद आदि तो ऐसे वैष्णव भक्ति परक ज्योति पुंज हैं जिनसे शताधिक भक्ति-किरणें बिकीरित होकर आदि, मध्य और आज के युग को भी जाज्वल्यमान कर रहे हैं। ब्रह्मानन्दी, मर्यादापरक, प्रेमा और रागानुराग, निर्गुण ब्रह्मोपासना, सगुण वात्सल्य, संत तथा सूफी भक्ति और न जाने कितने प्रकार की भगवद्‌भक्ति ने ईश्वरानुराग से आलिप्त मानव हृदय को अभिसिंचित किया है। अपने आराध्य से प्रेम, अनुराग, सम्बन्ध उद्‌वोधन, श्रृंगारिक भावना के अतिरिक्त हार्दिक अभिव्यक्ति जैसे दैन्य, कार्पण्य और समर्पण आदि भावनाएं भी सदा संलग्न रही हैं। कई भक्ति ग्रन्थों, सम्प्रदायों और पंथों में इनकी मधुर अभिव्यक्ति हुई है। नारद भक्ति सूत्र में तो इसके विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं। सत्य तो यह है कि वैष्णव धर्म का भव्य भवन पुराणों की सुदृढ़ नींव पर ही अवलम्बित है।

मेरे विषय का प्रतिपाद्य यहां केवल लोक-संस्कृति एवं लोक-विश्वास में प्रचलित 'महाशिवरात्रि' पर्व-उत्सव का उल्लेख करना मात्र है। सम्पूर्ण देश में यह पर्व विविध विश्वासों और प्रचलित परम्पराओं के आधार पर विविध रूप से मनाया जाता है। अतः इसका प्रामाण्य या सत्यापन धार्मिक ग्रन्थों में ढूंढ़ना अनुमेय नहीं है। क्योंकि लोक-संस्कृति एवं परम्परा में बहुत से ऐसे पक्ष आकर समा गए हैं जिनका प्रमाण सिर्फ लोक-विश्वास में ही ढूंढा जा सकता है। लोक-विश्वासों में प्रचलित परम्परा का अध्ययन, विश्लेषण करना अपने आप में महत्वपूर्ण विषय है। कोई भी परम्परा चाहे वह आज मानव समाज में कितने भी परिवर्तित रूप में प्रचलित क्यों न हो, लोक-विश्वास का नवनीत उसमें अवश्यमेव रहता है।

हिमाचल प्रदेश के महासू क्षेत्र में शिवरात्रि पर्व मनाने की अपनी एक परम्परा है, अपना एक रीति-रिवाज है। इसमें एकाधिक मनोरम अवधारणायें गुंथी हुई हैं। यह इस क्षेत्र के कई स्थानों पर उत्सव या पर्व के अतिरिक्त वार्षिक त्यौहार के रूप में भी मनाया जाता है। कामना-कल्पना और हर्षोल्लास लिए हुए फाल्गुण मास की कृष्ण चतुर्दशी का हमारी लोक-संस्कृति एवं परम्परा में पौराणिक महत्व है। महाशिवरात्रि की यह पुण्य तिथि है, अतः इसे शिव चतुर्दशी भी कहा जाता है। युगों से मनाते आ रहे इस पर्व ने अपने मौलिक स्वरूप से इतर भी कुछ प्रथाओं को जन्म दिया है जो महासू क्षेत्र में मौजूद है। लोक व्यावहारिक स्वरूप से पूर्व इसका पौराणिक स्वरूप पौराणिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है। समुद्र-मन्थन की कथा पुराणों में कई सन्दर्भों से जोड़कर कही गई है। सागर-मंथन के पश्चात् उससे उद्भूत चौदह रत्नों की सर्वविदित अवधारणा लोक-मानस में अवस्थित है। चौदह में से बारह रत्न तो यथास्थान अवस्थित हो गये। तेरहवां रत्न अमृत कुम्भ था। इस पर देव दानवों में खूब खींचातानी हुई। कहा जाता है कि इसके लिए अमृत-कुम्भ लिए हुए विष्णु स्वरूप भगवान् श्री धन्वन्तरि का आविर्भाव हुआ योजना यह थी कि असुरों को अमृतपान न कराया जाए। अतः दोनों पक्षों में युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। इन्द्र के पुत्र श्री जयन्त असुरों से बचाने के निमित अमृत-कुम्भ को लिए हुए लगातार बारह दिनों तक सब दिशाओं में भागते रहे। पौराणिक विश्वास है कि इस दौड़ भाग में कुम्भ (पात्र) से अमृत गिर गया। इस पृथ्वी में वह चार स्थानों पर गिरा। यही कारण है कि जहां-जहां पर कुम्भ में से अमृत गिरा, वहां-वहां पर कुम्भ योग पड़ने से कुम्भ-पर्व मनाया जाता है। इस मानव-लोक में कुम्भ से हरिद्वार में गंगा तट पर, प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर, नासिक में गोदावरी तट पर और उज्जैन में क्षिप्रा तट पर अमृत गिरा था। अतः भू-लोक में ये चार विख्यात तीर्थ स्थान हैं, जहां पर कुम्भ पर्व होते हैं। यह भी विधान है कि कुम्भ का योग हर तीसरे वर्ष चार में से किसी एक स्थान पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त अर्द्ध कुम्भ और पूर्णकुम्भ भी होते हैं।

यह तो तेरहवें रत्न 'अमृत कुम्भ का लौकिक, आलौकिक और पौराणिक इतिहास है। इसी प्रकार चौदहवें रत्न की अवस्थिति का भी अपना एक अलग इतिहास है। समुद्र मंथनोपरान्त चौदहवां रत्न विष कुम्भ अथवा विष-पात्र निकला था। देव उसे दानवों को देना चाहते थे, लेकिन अमृत-परिबांटन की स्थिति से वे सतर्क हो गये थे और अब वे किसी भी प्रकार देवताओं के झांसे में आने वाले नहीं थे। अतएव यह विषपात्र देवाधिदेवों के लिए एक विकट समस्या बन गया था। इससे देव-दानव, सुर-असुर सभी समुदाय विचलित हो उठे। इससे कुछ भी अनिष्ट हो सकता है, पृथ्वी भस्मसात हो सकती है, सुर-असुर प्रलयग्रस्त हो सकते हैं, मानव संस्कृति और सृष्टि का इतिहास मिट सकता है।

लेकिन, जब-जब विश्व में आपदालिप्त समस्यायें या संकट आये हैं तब-तब समाधानार्थ कालदर्शी पैदा हुए हैं, यह एक तथ्य है। भगवान् शिव इस विकट समस्या तथा आसन्न संकट के समाधान के लिए प्रस्तुत हुए। उन्होंने पृथ्वी, सुरासुर संस्कृति एवं इतिहास की रक्षा के लिए अत्यन्त संयम से पूरा विष कुम्भ अपने कण्ठ में उतार दिया, फलतः नीलकण्ठ कहलाये। यह महाशिवरात्रि पर्व की वही रात्रि है जिस रात दसरूप रुद्र भगवान् शिव शंकर विष के प्याले को

पीकर निश्चल, शान्त और अचेतनावस्था में थे और पूरा देव समुदाय, असुर मण्डली, नर-नारी रात्रि जागरण कर उनकी कुशल कामना कर रहे थे। सपूर्ण रात्रि को मूर्च्छितावस्था में रहने के बाद चौथे पहर प्रातः भगवान् शिव चेतन स्थिति में आये, उन्होंने घोषणा की कि जो भी देव, दानव इस रात्रि को जागृत रहे और भविष्य में भी जो देव, असुर, नर या नारी इस रात्रि को जागरण करेगा, वह मनवांच्छित फल का अधिकारी होगा। तभी से लोक-संस्कृति में इस पर्वोत्सव को मनाने की अटूट परम्परा है।

देश के विभिन्न भागों की तरह हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में इस महोत्सव को मनाने की विविध परम्परायें हैं। अकेले महासू क्षेत्र में यह अलग-अलग परम्पराओं से मनाया जाता है। इसके निचले भागों में यह सामान्य व्रत और रात्रि-जागरण के रूप में मनाया जाता है। शिव मन्दिरों में शिव लिङ्ग पर जल चढ़ाया जाता है। भजन-कीर्तन आदि होते हैं। अपर महासू क्षेत्र में इसके मनाने की दो परम्परायें जन-प्रचलित हैं। एक परम्परा तो यह है कि लोग दिन में व्रत रखते हैं। व्रती बड़ी निष्ठा से सम्पूर्ण दिन व्यतीत कर व्रत का समापन करते हैं। रात्रि को भजन और जागरण करते हैं। गांव के सभी लोग किसी एक जगह या देवालयों में एकत्र हो कर हरि-भजन में रात व्यतीत करते हैं। यह लगभग सभी जगह होता है। इसके अतिरिक्त यह भी एक परम्परा है कि लोग दैन्य एवं कार्पण्य आदि भक्ति-भावना से आपूरित होकर अपने आराध्य देव (शिव) का रूप-विन्यास करते हैं। स्त्री या पुरुष दोनों भस्मीभूत योगी का रूप धारण कर पूरे दिन व्रत रखते हैं और स्थान-स्थान पर जा कर भिक्षा मांगते हैं। इसके पीछे यह लोकावधारणा है कि व्रती अपनी विशिष्ट इच्छा की पूर्ति के लिए ऐसा वेष बना कर भोला भण्डारी से 'मांगा वर' मांगते हैं। उदाहरणार्थ कोई महिला सन्तानेच्छा से इस व्रत को रखती है। वह प्रातः स्नानादि करती है। विशिष्ट कामना से अनुग्रहीत हो जोगिन का वेष बनाती है। जैसे एक दिन के लिए उसने सारे संसार से नाता तोड़ दिया हो। पूजा-अर्चना के पश्चात् वह भिक्षा मांगने अपने घर से निकल पड़ती है। यह भी विधान है कि वह सबसे पहले अपने मायके के द्वार पर चिमटा बजा कर भिक्षा हेतु अलख जगायेगी। वह उस घर से पहली भिक्षा प्राप्त करती है और फिर अन्यत्र। लोग ऐसे व्रती वेषधारियों को श्रद्धान्वित प्रभु बन्दना के साथ यथेष्ठ भिक्षा देते हैं और कामना करते हैं कि उसे ईश्वर 'मांगा वर' दे। 'मांगा वर' का प्रचलित व्यावहारिक अर्थ है 'मांग कर वरदान' अर्थात् 'इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए वरदान मांगना'। सन्ध्या ढलने से पूर्व वह जोगिन वेषधारी महिला अपने पति-गृह लौट आती है और मांगी हुई भिक्षा को साक्षात देवाधिदेव शिव का प्रसाद मान कर उसकी पूजा-अर्पणा करती है। उसकी मीठी रोटियां बना कर वह गाय को श्रद्धा से खिलाती है। रात्रि जागरण और प्रभु गुण-कीर्तन के साथ वह व्रत का समापन करती है। व्रत की ऐसी विधि लोग पुत्र-प्राप्ति, भाई-प्राप्ति, इच्छित वर-प्राप्ति, रूप, जय, जश-प्राप्ति, रोग-शोक निवारणार्थ, सुख-सौभाग्य प्राप्ति आदि के लिए करते हैं।

ऐसे व्रत धारियों की दृष्टि में एक मात्र शिव परम तत्व है। यह संसार उसी से और उसी के कारण है। वह प्रलय का अधिष्ठाता और सुरक्षा का आधार स्तम्थ है। ऐसे व्रतियों का कहना है कि इस पद्धति से व्रत कर उन्हें इच्छित वरदान की प्राप्ति हुई है। एक प्रौढ़ महिला ने तो प्रमाण रूप में अपने किशोर पुत्र को दिखाया है। उसका कहना था कि उपरोक्त विधान से

व्रत करने पर उसे इस आयु में पुत्र की प्राप्ति हुई है। विश्वास और निष्ठा में कितनी अतुल शक्ति होती है, यह उसका बेजोड़ उदाहरण कहा जा सकता है। लोगों के इस शिवार्पण विश्वास में अनायास कश्मीर के शैवाद्वैत और प्रत्यभिज्ञा दर्शन की पावन झलक मिलती है। इस दर्शन में शिव को ही एक मात्र परम तत्व स्वीकार किया गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में कहा गया है कि इस अखिल जगत्प्रपंच की सृष्टि के लिए केवल शिव की शक्ति का परिस्पन्द ही पर्याप्त है, किसी अन्य की इसमें आवश्यकता नहीं होती शक्ति और शक्तिमान शिव में अभेद है। अतः एक मात्र परम तत्व परम शिव है। यह दृष्टि शैवागम के अनुकूल है। परम शिव शुद्ध अद्वैत, निर्विकार एवं सच्चिदानन्द रूप हैं। सृष्टि शिव-सृष्टि है। शिव शक्ति अनन्त हैं। ये मुख्यतः पांच हैं :— चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इन्हीं पांच शक्तियों द्वारा परम शिव जगत्प्रपंच को स्फुरित करता है। 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' और 'शिव दृष्टि' में बताया गया है कि यह विश्व परम शिव से अलग नहीं है :

"पराशक्तिरूपा चितिरेव भगवतीशक्तिः शिवभट्टारकाभिन्ना तदानन्त जगदात्मना स्फुरति।"

इन दार्शनिक उपपत्तियों से भले ही ये लोग परिचित न हों, लेकिन उनकी इस शिवार्पण भावना में शिव समर्पित भक्ति का सब से उज्जवल स्वरूप विद्यमान है। उनकी शिव-भक्ति, पूजा-व्रत की इस परम्परा में प्रकाशरूपता, स्वातंत्र्य, चमत्कारिक इच्छा शक्ति, आमर्शरूपता और योगरूप क्रियाशक्ति का स्वच्छ समन्वय-सामंजस्य दिखाई देता है। महाशिवरात्रि पर्व को मनाने की इस क्षेत्र में यह अत्यन्त स्वस्थ एवं समृद्ध परम्परा कही जा सकती है।

इसी क्षेत्र अपर महासू में कहीं-कहीं यदि ऐसी उज्जवलतम परम्परा से शिवरात्रि पर्व सम्बद्ध है तो इसी क्षेत्र के अन्य एकाधिक भागों में इस पर्व को बनाने की एक दूसरी विचित्र परम्परा देखने को मिलती है। लोग स्नानादि कर पूरे दिन व्रत रखते हैं। घरों को विशेष रूप से सजाया जाता है। नाते-रिश्तेदारों को इस उत्सविक अवसर पर आमन्त्रित किया जाता है। गांव-घरों का पूरा वातावरण महोत्सवीय चहल-पहल से मनोरम हो उठता है। सब लोग यथाशक्ति दिन में व्रत रखते हैं। व्रत रखने में भी एक प्रकार की उपवासिक लग्न सब में समाहित हुई दिखाई देती है। इसी उपक्रम में दिन बीत जाता है, शिवरात्रि पर्व का आगमन होता है। घरों में ज्योति प्रज्वलित की जाती है। लोग शिव भगवान् की पूजा, आराधना करते हैं, जागरण भी होते हैं। पर्व त्यौहार के रूप में बदल जाता है, घर-घर में अथवा संयुक्त रूप से बकरे काटे जाते हैं। व्रती लोग त्यौहार के उत्साह में मग्न मांस खाते हैं और अन्य मादक वस्तुओं का सेवन करते हैं। लोग इस अवसर पर एक विशेष प्रकार की विलसित तुष्टि का अनुभव करते हैं। यह प्रचलन जो रूढ़ अर्थ में एक क्षेत्रीय परम्परा बन गई है, वास्तव में शिवरात्रि मनाने का एक रिवाज है और इस रिवाज के पीछे परम्परा का कोई ठोस कारण स्रोत नहीं है। ऐसा महज प्रसन्नता से त्यौहारिक तुष्टि के निमित किया जाता है। लोग दीपावली के स्थान पर इसे ही धूमधाम से मनाते हैं।

समुद्र-मन्थन से उत्पन्न विष-कुम्भ वाली पौराणिक घटना से शिवरात्रि का सम्बन्ध मानने पर तो शिवरात्रि को शिव-संकट की रात्रि कहा जा सकता है। विश्व को एक अमोघ संकट से बचाने-उबारने के लिए श्री शंकर का हलाहल पान अनूठा बलिदान और वह रात्रि अनुपम बलिदान

की रात्रि मानी जा सकती है। यह सार्वभौमिक समस्या के समाधान की एक विकट, अद्भुत परीक्षा की बेला है। इस अर्थ में इस पर्व से हमें आज के युग की व्याप्त सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं से जूझने तथा यथोचित सर्वजन मान्य समाधान निकालने को सशक्त नैतिक प्रेरणा मिलती है।

लेकिन, मण्डी क्षेत्र में शिवरात्रि पर्व को एक अन्य सन्दर्भ से जोड़ा जाता है। यहां नगाधिराज हिमाचल की कन्या पार्वती जी से भगवान् शिव के पाणिग्रहण के उत्सव से इस पर्व को जोड़ा जाता है। शिवरात्रि यहां भव्य उत्सव और मेले के रूप में मनाई जाती है। मण्डी स्थित पाडले मैदान में सात दिन तक खूब मेला लगता है। देवी-देवता नचाये जाते हैं, अनेक सांस्कृतिक आयोजन किये जाते हैं। वहां के प्रसिद्ध देवता माधोराय की आरम्भ और अन्त में झांकी निकाली जाती है। इस अवसर के झांकी-जलूस का भव्य दृष्य विख्यात है। स्वयं मण्डी के जिला अधिकारी द्वारा माधोराय देवता के साथ अन्य देवी-देवताओं को आमन्त्रित किया जाता है। इसके लिए पूरा व्यय सरकार उठाती है। आरम्भ से ही भूतनाथ के मन्दिर में लकड़ी इकट्ठी की जाती है। हवन, अग्नि-प्रज्वलन, जागरण, भजन-कीर्तन तथा व्रतादि किए जाते हैं। मण्डी में शिवरात्रि मेला कुल्लू के दशहरे के समकक्ष ही व्यापक प्रादेशिक स्तर का होता है। शिवरात्रि का यह मांगलिक स्वरूप है। प्रसन्नता से ओत-प्रोत लोग बड़े से बड़ा भोजन बनाते हैं, बकरे कटते हैं, मांस खाया जाता है और अन्य मनोरंजनपरक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। लेकिन, व्रत धारण किये लोग मीट-मांस या मादक पदार्थादि का सेवन नहीं करते। व्रत समापन के पश्चात् सभी लोग मेले का आनन्द लेते हैं। यह वहां का वस्तुतः वार्षिक महोत्सव है इसलिए पूरे शहर और गांवों को इस अवसर पर विशेष रूप से सजाया-संवारा जाता जिससे उत्सव की सार्वजनिक छवि एवं हर्षोल्लास पर चार चांद लग जाते हैं। मण्डी क्षेत्र के लोक-मानस में शिवरात्रि महोत्सव की यह अवधारणा है कि इस पर्वावसर पर भगवान् शिव-पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ था, अतः इस मांगलिक अवसर की प्रसन्नता में जश्न मनाए जाते हैं, प्रसिद्ध मेले का आयोजन होता है।

कांगड़ा कुल्लु और चम्बा क्षेत्र में इस पर्वावसर पर दो-दो दिन के मेले का आयोजत होता है। कांगड़ा के प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक वैजनाथ के मन्दिर तथा अन्य मन्दिरों में पूजा होती है। व्रती भक्तों एवं सामान्य लोगों की चहल पहल में मेला होता है। घरों और मन्दिरों में रात्रि-जागरण होते हैं। कांगड़ा में 'रलियां दा मेला' प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की कुमारी लड़कियां रलियां बनाती हैं। चैत्र मास के आरम्भ से लेकर मास पर्यन्त प्रातः उसकी पूजा करती हैं और बैसाख की संक्रांति के दिन उसका शंकर से विवाह सम्पन्न करवाती हैं। अन्त में इन्हें समीपवर्ती पावन नदियों में प्रवाहित किया जाता है। अतः मण्डी क्षेत्र की शिवरात्रि विषयक लोक-धारणा यहां नहीं है और न इस अवसर पर यहां मीट-मांसादि खाया जाता है। कुमारी किशोरियों के मास-पर्यन्त इस पूजा प्रथा में यह वरदानिक धारणा निहित समझी जाती है कि वे महीने भर यह विधिवत् व्रत, नियम कर अभीष्ट वर प्राप्ति सुख, सौभाग्य, यश, कीर्ति आदि का वरदान मांगती हैं। अविवाहिता लड़कियों का यह पावन यम-नियम अन्य क्षेत्रों-विशेषकर गढ़वाल क्षेत्र में भी प्रचलित है। लड़कियां दो रीतियों से अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए नियमित विधान करती हैं। एक तो यह कि वे पूरे माघ मास की प्रातः को

नित्य नदी या बावड़ी में स्नान करते जाएंगी और मासांत में इसका समापन करेंगी। उनका यह नित्य नियम माघ मास की मकर संक्रांति से आरम्भ होता है और दूसरी संक्रांति को समापन। इसमें विशेष विधान यह होता है कि नहाने से पूर्व किसी का मुँह न देखा जाए। अतः वे रात खुलने पूर्व ही स्नान कर आती हैं और तत्पश्चात् घर आ कर नित्य पूजा। दूसरी रीति यह है कि कंवारी लड़कियां हर घर की देहलीज पर प्रातः भुसमुसी रात (अर्थात् किसी भी घर के दरवाजे खुलने से से पूर्व) ताजे पुष्प फैंक आती हैं। इसमें भी यह विधान होता है कि देहलीज पर फूल रखते समय उसे कोई देखे न। यह क्रम वसन्त पंचमी से आरम्भ होता है और वैसाखी (वैसाख मास की संक्रांति) को इसका त्यौहार के साथ समापन किया जाता है। उस दिन पुष्प डालने वाली लड़कियां थाली में मिठाई पुरियां तथा चन्दन केसर आदि लेकर उन-उन घरों में जाती हैं जहां-जहां उन्होंने नियमित रूप से पुष्प गिराए थे। वे लोगों को टीका लगाती हैं, मिष्ठान-पकवान देती हैं और बदले में उनसे अभीष्ट वर प्राप्ति का आशीष मांगती हैं।

शिवरात्रि पर्व भी कहीं-कहीं इस प्रकार की हार्दिक कामनाओं से सम्बद्ध है जिसका हम पीछे उल्लेख कर आए हैं। कांगड़ा में यह भी प्रथा है कि वहां लोग शिवरात्रि पर्व के अवसर पर कपड़े आदि धोना इष्ट नहीं मानते। लोक मान्यता है कि उस दिन कपड़े धोने से उनके मैल का शिवजी के मुँह में जाने का भय होता है। अतः लोग उस दिन कपड़े नहीं धोते। इस लोक मान्यता का सीधा सम्बन्ध भगवान् शिव की मूर्च्छितावस्था से स्थापित किया जा सकता है। इससे एक तो यह अर्थ ध्वनित होता है कि शिव हलाहल पीकर बेसुध हैं अतः ऐसी स्थिति में स्वच्छ-अस्वच्छ-बोध का अज्ञान स्वाभाविक है, और दूसरा यह अर्थ ध्वनित होता है कि आज शिवशंकर विष पीकर मूर्च्छित हैं अतः यह हम सबका नैतिक कर्त्तव्य है कि सब दैनिक कार्यों को त्याग कर उनकी कुशल-कामना के लिए एकत्र होकर उनका उद्‌बोधन करें। नाहन, सिरमौर क्षेत्र में भी इसी रीति से यह मनाया जाता है। कांगड़ा की इस लोक-धारणा के समानुकूल ही यहां इस दिन महिलाएं अपने केश-प्रच्छालन अनुचित समझती हैं। व्रत रखे जाते हैं, जागरण होते हैं और शाकाहारी रीति से व्रत का समापन किया जाता है।

कुल्लु में सरवरी बाजार में इस अवसर पर दो दिन का मेला लगता है। जमदग्नि ऋषि के मन्दिर में पूजा-जागरण होता है। देवता को भी इस अवसर पर स्नानादि कराया जाता है। अन्य सामान्य विधि द्वारा शिवरात्रि मनाई जाती है। चम्बा में भी इस अवसर पर मेला होता है। यहां के मणि महेश और उसके मन्दिर का ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्व है। इसके अतिरिक्त जहां-जहां इस क्षेत्र में मन्दिर हैं, वहां-वहां यह पर्व धूम-धाम तथा धार्मिक निष्ठा से मनाया जाता है। किन्नौर क्षेत्र में विभिन्न गांवों में शिवरात्रि अपनी किन्नर-परम्परा के आधार पर क्षेत्रीय रीति से मनाई जाती है। सब स्थानों पर मेलों का आयोजन होता है; सतलुज में स्नानादि करते हैं। शिवलिंग की अनेक भांति से पूजा की जाती है, कहीं धूप-केसर से, कहीं जल से, कहीं पुष्प अथवा हरित पर्ण से और कहीं मदिरा से। इस अवसर पर आयोजित मेलों में गीतादि गाए जाते हैं और व्रत रखे जाते हैं। यह भी प्रथा है कि एक घास तिर्णादि का पुतला बनाकर उसकी पूजा की जाती है और तत्पश्चात् उसे किसी ऊंचे स्थान पर अगले वर्ष तक के लिए रख दिया जाता है। उसे वे शुभसूचक समझते हैं। मुख्यतः इन क्षेत्रों में शिवरात्रि त्यौहार के रूप में मनाई जाती है और हर

घर में उस दिन बकरे काटे जाते हैं। लेकिन, जैसा कि कहा गया है, यह सिर्फ त्यौहार मनाने के उद्देश्य से ही किया जाता है।

देखा गया है कि इस पर्व को हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विविध रूप से मनाया जाता है। किसी पर्वोत्सव मनाने की विभिन्न परम्पराओं के मूल में अवधारणिक रूप से लोक-विश्वास निहित रहते हैं और वे आगे चल कर सर्व-सम्मत सामूहिक लोक संस्कृति का अंग बन जाती है। इन क्षेत्रों में इस अवसर पर बकरे कटते हैं, यह एक रिवाज या प्रथा मात्र है, इसमें किसी प्रकार बलि-भावना या बलि देने की धारणा नहीं है। इसमें प्रायः धार्मिक या पौराणिक परम्परा की अपेक्षा क्षेत्रीय उत्सवपरक तथा प्रसन्नतापूर्ण त्यौहारपरक पक्ष का ही व्यवहार किया जाता है। फिर भी देश के अन्य भागों की तरह हिमाचल प्रदेश के सभी क्षेत्रों में शिवरात्रि महोत्सव का महत्वपूर्ण स्थान है। शिवरात्रि यहां एकाधिक रूपों में पारम्परिक हर्षोल्लास से मनाई जाती है।

द्वारा श्रीमती कमला शास्त्री
केन्द्रीय तार कार्यालय
शिमला-१७१००१

रावण व्यक्तित्व और कृतित्व

–चन्द्रशेखर बेबस

हमारी नित्य व्यवहार की भाषा में किसी शालीन सुन्दर, सौम्य-दयालु और उपकारी व्यक्ति को देवता और इसके विपरीत क्रूर-दम्भी निर्दय और अमानवी व मायावी पुरुष को राक्षस संज्ञा दी जाती है। ऐसे बदनाम व्यक्तित्वों से जुड़ने के कारण राक्षस शब्द अधिक ही बदनाम हो गया है, जबकि मूलतः यह रक्ष (रक्षणे) धातु से बना है जिसे 'रक्षा करने वाला' अर्थ में बताते हैं, और वैसे भी राक्षस देवताओं के समयोनि माने गए हैं, देवयोनियों में जो जातियां गिनाई गई हैं, उनमें कुछेक नाम भेद से नीचे लिखे आठ नाम प्रसिद्ध हैं, गन्धर्व, यक्ष-राक्षस, किन्नर, विद्याधर, गुह्यक, भूत, पिशाच साथ ही अप्सराएं भी इसी कोटी में आती हैं, कहीं-कही चारण, सिद्ध-मुनि-योगी भी विकल्प से या सीधे इनमें शामिल हैं, परन्तु राक्षस शब्द विकल्प मुक्त है।

व्युत्पत्ति और उत्पत्ति से हेय न होने पर भी आचरण से कुछेक देव योनिज अवश्य असुर या दैत्य (अर्थात् अदेवता) शब्द के ही पात्र सिद्ध होते हैं, जो राक्षस पिशाच आदि के लिए सर्वत्र बरता गया है, महाभारत में तो यक्ष-राक्षस किन्नरों के साथ वानरों को भी पुलस्त्य की सन्तान गिनाया है यथा :

राक्षसाश्च पुलस्त्यस्य वानराः किन्नरासाधा।
यक्षाश्च मनुज व्याघ्र पुत्रास्तस्य च धीमतः॥

उसी पुलस्त्य की जिसके पुत्र कुवेर रावणादि के पिता विश्रवा थे जो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र पुलस्त्य के आत्मज थे, उन्हीं का एक पुत्र कुवेर देव श्रेणी में मिल गया इतना ही नहीं, वहां उसे कोषाध्यक्ष का प्रतिष्ठित पद भी प्राप्त हुआ और यक्षों का आधिपत्य भी। जबकि रावण के लिए वे सभी संज्ञा शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो राक्षस के पर्यायवाची हैं।

लेख का शीर्षक रावण परक है अतः राक्षस पक्ष पर उतना भर प्रकाश डालना संगत है जिसका रावण से सम्बन्ध है।

कुछ लोग पूर्वाग्रह ग्रस्त हो कर या भ्रमवश इसका कारण काव्यकारों का पक्षपात मानते हैं कि उन्होंने अपने प्रिय पुरुष श्रीराम को भगवान के रूप में प्रस्तुत करके उनके प्रतिद्वन्दी रावण की पहचान बिगाड़ कर रख दी है और राक्षस बना डाला है इसके मूल में विजेतों के प्रति विजेताओं की परम्परागत बदनाम करने की मनोवृत्ति भी बताते हैं, परन्तु रावण के बारे चित्र बिगाड़ने वाले आरोप पूर्णतः उपयुक्त नहीं है इसके लिए रावण स्वयं भी कम उत्तरदायी नहीं रहा, रावण के जीवन का परार्ध इसका प्रमाण है।

रावण ब्रह्मा के पोते विश्रवा ब्राह्मण का औरस पुत्र था। विश्रवा की पहली पत्नी भारद्वाज मुनि की पुत्री देव वर्णिनी थी, जिससे कुवेर का जन्म हुआ था, जबकि दूसरी पत्नी केकसी से रावण कुम्भकर्ण, विभिषण पुत्र और शूर्पणखा पुत्री चार संतानें हुई।

यद्यपि सुरों, मनुजों और राक्षसों में समान योनि में ही सम्बन्ध होते रहे हैं परन्तु कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप विजातियों में भी बिवाहादि होते रहे हैं, और उनसे उत्पन्न संकर सन्तानें भी चमत्कारिक सिद्ध हुई हैं, जैसे भीमसेन पांडव का हिडम्बा राक्षसी से प्रणय विवाह और घटोत्कच जैसी संकर पर अतुल पराक्रमी व मायावी सन्तान की उत्पत्ति जिस ने महाभारत में भयंकर युद्ध कर दिखाया था। यह सब आसुरी माया उसे अपने दैत्य मातृ कुल से प्राप्त हुई थी। अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि देवों और दानवों की शरीर रचना मानवों के शरीर से अधिक क्षमता वाली थी, उनमें अतीद्रियता भी होती थी और यान्त्रिकता भी जिस से भी वे अपने को मानवों से उत्कृष्ट मानते रहे और देवताओं से भी बराबरी की टक्कर लेते रहे, जब कि मानवों ने यान्त्रिकता को आसुरी कल्पना कर गर्हित और वर्जित माना (यहां तक कि कुम्हार के चाक पर बने मिट्टी के पात्रों को भी आसुरी और यज्ञादि के अयोग्य ठहराया है)। ऐसी ही क्षमताएं देवों की देहों में भी थीं। इन्हीं समानताओं के कारण कदाचित् इन दोनों को समकक्ष या समान योनि माना गया है, अन्यथा तो इनके गुण, कर्म, स्वभाव भी परस्पर भिन्न थे। देवता जहां अपनी मानवेतर क्षमताओं व शक्ति को रचनात्मक लोक कल्याण की दिशा में लगाते थे, वहां दानव इसके विरुद्ध ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों में। तदनुरूप ही देवताओं के तन सुन्दर और सौम्य तथा राक्षसों के क्रूर, भयंकर, सींग, पूंछ आदि युक्त भी दर्शाए गए हैं। ये शरीर परिवर्तन में भी सक्षम थे।

हम मनु वंशजों के लिए परिमित क्षमताशाली देह परन्तु असीम क्षमता वाली बुद्धि और मन मिले हैं तथा यह भू लोक मिला निवास के लिए, जब कि देवताओं को ऊपर के स्वर्गादि और दानवों को नीचे के पातालादि। यह भू लोक कर्मभूमि है। जहां मनुष्य कर्म द्वारा देवत्व और आसुरता भी जुटा सकता है, जब कि स्वर्ग और पाताल यहां की उपज (पाप पुण्य) को भोगने के लोक हैं।

हां तो रावणादि को भी कुलीन पिता के साथ असुर कुल में जन्मी माता प्राप्त हुई थी, इनकी माता केकसी के मायके राक्षस कुल की कुछ पीढ़ियों का इतिहास इस प्रकार है :– एक 'हेति, नाम के राक्षस राज थे, उनका काल की वहिन 'भया' से ब्याह हुआ था, उनका पुत्र विद्युत्केश था। उसके पुत्र 'सुकेश' ने ग्रामणी नाम के गन्धर्व की पुत्री देववती से ब्याह करके 'माल्यवान्, सुमाली और माली नाम के तीन पुत्रों को जन्म दिया, इन तीनों के ब्याह नर्मदा नाम्नी गन्धर्वी की 'सुन्दरी, केतुमती और वसुदा' नाम की पुत्रियों से क्रमशः हुए थे। माल्यवान सुन्दरी के जोड़े से सात पुत्र और एक पुत्री हुए। सुमाली और केतुमती ने दस पुत्रों और चार पुत्रियों को जन्म दिया, इन्हीं चार में से एक रावणादि की माता केकसी भी थी जो ऊपर लिखे विश्रवा को ब्याही गई थी और रावणादि की माता बनी। इस प्रकार यह असमान योनि अर्थात् मानव पति और अमानव (राक्षस) पत्नी का जोड़ा बना। इसकी पृथक पृष्ठभूमि है कि मानवों से अपने को श्रेष्ठ मानने वाले राक्षस सुमाली ने मानव को जमाता बनाने का कड़वा घूंट पिया था।

राक्षस लोग आपसी फूट के कारण जब देवताओं से पराजित हुए तो माल्यवान आदि को भाग जाना पड़ा था, यह कसक उन्हें निरन्तर सालती रहती थी और बदला लेने के उपाय सोचते रहते थे। एक बार कुबेर जब पुष्पक विमान पर उड़ा जा रहा था तो सुमाली (रावण के नाना) के मन में क्षोभजन्य विचार उठा कि हमारी परम्परा में भी कोई ऐसा वीर उत्पन्न होता जिस के बूते पर शत्रुओं से बदला ले पाते। अतः उसने कुबेर के पिता विश्रवा से ही यह आशा करके एक लड़की उसे ब्याह देने का संकल्प किया और केकसी का विवाह विश्रवा से करके अपनी साध पूरी भी कर ली, यह सर्व प्रथम अंतर्जातीय ब्याह पाया जाता है। इससे उत्पन्न संतति संकर कहलाने की पात्र है। फिर भी वह आरम्भ में पितृकुल के प्रभाव से एकदम वंचित नहीं रहा उसने बाल्य और कैशोर्य काल से प्रगाढ़ विद्याध्ययन करके सांग वेदों का अध्ययन किया, फिर ब्रह्मा जी से वर पाने की कामना से बड़ी उग्र तपस्या भी बड़े संयम और मनोयोग से की थी, और सफलता भी पा ली। अपूर्व सामर्थ्य, शक्ति और सत्ता उसे इस तपस्या से प्राप्त हुई थी। सम्भव है वह आगे भी एक विनयशील विद्वान ही सिद्ध होता, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उसके नाना सुमाली ने अपने मनोरथ (देवताओं से बदला) के निमित्त रावण को अपने (राक्षसी) पथ की ओर घसीटा होगा, जो उसका संकल्प था। और बाल्मीकि के अनुसार तो उसे दुष्ट व दुराचारी होना ही चाहिए था क्योंकि उसका गर्भधान ही सन्ध्या बेला में हुआ था जो इस काम के अनुकूल नहीं माना गया है, ऐसे ही कुसमय में केकसी ने गर्भाधान की कामना की थी। केकसी के इस क्षणिक मनोविकार जन्य दुष्परिणामों के प्रभाव को उत्तम कुलीनता, उच्च शिक्षा और घोर तपस्या भी नष्ट नहीं कर सके, वह आसानी से पाप प्रवृत हो सका।

अब सुमाली ने देवताओं से बदला लेने का चक्र चलाया। नाना की उकसाहट से उसका दानवता की ओर मुड़ना था कि उसे तपस्या से प्राप्त शक्ति और सत्ता का नशा सा हो गया, या कहिए अपच हो गया और अपना पराक्रम दिखाने के लिए आकुल रहने लगा। विद्या से प्राप्त ज्ञान, तप प्राप्त समस्याओं के आगे लुप्त हो गया और उसने अनाचार और अत्याचारों को अपना मनोरंजन बना लिया और ऋषियों के यज्ञ आश्रम आदि का ध्वंस नित्य कार्य-क्रम।

इसी शृंखला में उन्होंने बदले की भावना और त्रैलोक्य विजय की महात्वाकांक्षा से छेड़छाड़ का दौर चलाया। सर्व प्रथम उसने अपने सौतेले भाई कुबेर को लिया इसके डर से कुबेर ने देवताओं की शरण ली। फिर ये लोग इंद्र से भिड़े उसे बन्दी बना कर अपनी बेटी सुलोचना का ब्याह रावण के बेटे मेघनाथ से कर देने पर बाध्य किया। लंका के अभेद्य दुर्ग पर कब्जा करने के बाद इंद्रादि को जीतने और तपस्या से प्राप्त अलौकिक शक्ति के उन्माद से उसका साहस बढ़ा और त्रैलोक्य विजय के लिए शूर सामंतों समेत बाहिनी सजा कर कूच कर दिया। और बढ़ते-२ सारे क्षेत्र में उसने लूट और त्रास का आतंक मचा दिया। एक से दूसरे नगरों जनपदों को वायु वेग से रोंदना "युद्धं मे दीयतां विजितास्मेतिवा ब्रूत" (लड़ो या हार मानों) ऐसी ललकार करता हुआ वह आगे से आगे बढ़ता गया, बाल्मीकि जी ने ऐसा ही वर्णन किया है। इस विजय का इस काल में राक्षसों का आंतक रावण के नेतृत्व में हिन्द महासागर से बाहर भी पहुंचना अन्वेषक लोग मानते हैं।

भारत में रावण की सबसे उत्तरी सैनिक चौकी पंचवटी (नासिक) में थी, जहां खर-दूषण के सेना पतित्व में चौदह हजार राक्षस सेना तैनात थी। पूर्व की ओर मथुरा में अपने भतीजे लवणासुर

को नियुक्त कर रखा था। उससे आगे गंगा तट के करूष और मलद क्षेत्र में रावण के ही बांधव ताड़का के बेटे मारीच का अधिकार था। इधर ही कहीं अयोध्या और मिथिला के मध्य विश्वामित्र का आश्रम था जहां ये लोग उत्पात मचाया करते थे। दूसरी ओर अपनी नीति सत्ता से अपने से अधिक बलशाली बाली और सहस्रार्जुन को अनाक्रमण संधि द्वारा चुप करा रखा था। इनके अतिरिक्त आर्यावर्त के समस्त राजा उनसे डरते थे। स्वयं राजा दशरथ ने भी कहा था - **न हि शक्तोस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः** (मैं दुष्ट रावण के सामने युद्ध में खड़ा होने में असमर्थ हूं) रावण को आता देखकर देवता भी डर जाते थे। बाल्मीकि ने रावण की वीरता की प्रशंसा में उपमाओं की हद कर दी है, कहते हैं "रावण के भय से सूर्य अपनी उष्णता-पवन अपना वेग समुद्र गर्जन और नदियां प्रवाह रोक लेते थे। सारी प्रकृति ही भय से कुंठित हो जाती थी। इन अतिशयोक्तियों से हट कर यह तो प्रायः सिद्ध ही है कि कम से कम समूचे दक्षिण भारत में राक्षसों का सम्पन्न साम्राज्य था। लंका पति के जिस वैभव का बखान रामायणादि में किया गया है, वह मात्र शस्त्रास्त्र तक ही सीमित नहीं था। उसकी शासन, प्रशासन, अनुशासन की भी मिसालें मिलती हैं। लंका की लोक सभा, गुप्तचरों की व्यवस्था, शस्त्रास्त्र संग्रह युद्ध कला में निपुणता आदि। स्वयं हनुमान ने रावण का दरबार देखकर कहा था "अहो यद्यपि यह राक्षस घोर से घोर पाप करने में भी नहीं हिचकता, तथापि इसका ऐश्वर्य कितना आश्चर्यजनक, व्यक्तित्व कितना प्रभावी है परन्तु इसे देखकर भय का ही संचार होता है आनन्द का नहीं।" उनके रूप ऐसी ही धारणाओं और भावनाओं के अन्तर्गत पुराण और काव्यकारों ने उनके रूप कल्पित कर लिए हैं जिनका परिचय चित्रों या मुखौटों से परिलक्षित होता है। वास्तव में इनके गुण-कर्म-स्वभाव ही ऐसी धारणाएं बनाने के कारण हैं। रावण का नाम भी ऐसा ही है, जिसका अर्थ है रुलाने वाला। रावण को किसको रुलाने के एवज यह विशेषणात्मक नाम मिला, वैसे तो उसने असंख्य लोगों को रुलाया होगा और असंख्य ऐसे पात्र इतिहास में मिलेंगे जिन्होंने रावण से कहीं अधिक लोगों को रुलाया होगा, वे तो रावण नहीं कहाए। वास्तव में एक ऐसा प्रकरण पुराणों में मिलता है कि रावण ने एक ऐसे व्यक्ति विशेष को रुलाया था जो स्वयं भयंकर, डरावना आदि विशेषणों से भूषित है अर्थात् रुद्र (शिवजी) जिसकी अपनी व्युत्पत्ति भी कुछ वैसी ही मिलती-जुलती ही है। सर्व विदित है कि रुद्र रावण के परम आराध्य इष्ट देव रहे, वह उनका परम भक्त तो था पर समर्पित नहीं, आत्म सम्मान उसने सुरक्षित रखा हुआ था। एक बार रावण जब कैलाश पर रुद्र के दर्शन को गया तो वे उमा सहित एकान्त में थे अतः वह मिल नहीं सका। उसे क्षोभ हुआ और उसी प्रभाव में समूचे कैलाश को ही कंधों पर उठा लिया, जिससे उनका एकान्त ही भंग न हुआ बल्कि कैलाश ही डमाडोल हो गया था, अतः पार्वती भय के मारे रो भी पड़ी, रुद्र भी उद्विग्न हुए और ध्यान लगाकर घटना पहचानी कि यह अपने ही भक्त की करामात है। रावण की भक्ति का चमत्कार है तब उन्होंने जहां रावण को सावधान किया वहां उसे रावण नाम भी दिया अर्थात् पार्वती को रुलाने वाला, जन्म समय अर्थात् इस घटना से पूर्व उसका क्या नाम था यह कुछ स्पष्ट नहीं है।

राक्षसों की परम्पराओं में यौन सम्बन्धों के बारे में दृष्टिकोण कुछ भिन्न और मुक्त रहे होंगे, इसीलिए रावण की विधवा बहिन शूर्पणखा नासिक की साम्राज्ञी (जिसका पति विद्युज्जिम अपने साले रावण के त्रैलोक्य विजय अभियान में खेत रहा था, को इसके

मुग्रावित्रे में वह क्षेत्र प्रदान किया हुआ था। वह सुन्दर सलोने आर्य युवकों (राम लक्ष्मण) पर रीझ कर प्रणय प्रस्ताव कर देती है तो उनकी (या आज भी कई वर्गों की) दृष्टि में कुछ अनाचार नहीं था। हां कुलीन आर्यों विशेषतया मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए वह व्यभिचार रहा। उन्होंने उस से जो व्यवहार किया इसके औचित्य के विवाद में न पड़ कर रावण ने प्रतिक्रिया स्वरूप जो किया उसकी निन्दनियता तब बहुत क्षीण रह जाती है, जब उसने सीता के सतीत्व को अमानत स्वरूप अक्षुण्ण रखे रखा, जबकि राम लक्ष्मण ने उसकी बहिन का घोर अपमान उसके नाक, कान काट कर किया था, जबकि वह अपने सामाजिक मूल्यों से गलत नहीं थी। राक्षसों का दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति अत्यन्त कुत्सित रहा है। व्यक्तिगत रूप से भी रावण स्त्रियों के बारे बड़ा कमजोर था और कदाचित् इसी कमजोरी के कलंक से बचने के लिए उसने अपने को राक्षसों में शामिल करके कहा था "परस्त्रियों का उपभोग और बलात्कार पूर्वक उनका अपहरण राक्षसों का स्वधर्म है" त्रैलोक्य विजय के समय उसने सुन्दर स्त्रियों को खुलेआम लूटा था। अन्त में जब एक प्रख्यात महापुरुष श्रीराम की पत्नी सीता पर उसने हाथ डाला तो मानो पाप का घड़ा भर चुका, तब विभिषण और माली के चारों पुत्र भी रावण से कटकर श्रीराम से जा मिले। रावण के दशमुख बीस भुजा होना भी विवादास्पद है, जबकि जांघें दो ही दिखाई गई हैं, कुछ विद्वानों का मत है कि रावण ने विक्रमादित्य व अकबर की भांति नौ-नौ रत्नों के स्थान पर दस मुखिया नियुक्त कर रखे थे।

रावण की रही सही साख उसके ब्राह्मणों व ऋषि-मुनियों के प्रति दुर्व्यवहार के कारण नष्ट हो गई, उसे सरे आम ब्रह्मघ्न या ब्राह्मणों का हत्यारा कहा जाता था। जब राम दण्डकारण्य गए तब वहां के निवासियों ने उन्हें राक्षसों द्वारा मारे गए ऋषि मुनियों की हड्डियों के ढ़ेर दिखाए थे, तब भला कौन उसमें उज्जवलता खोल कर प्रस्तुत करता।

इस प्रकार रावण का व्यक्तित्व एक विवाद का विषय बन कर रह गया है। श्रेष्ठ मानव पिता, राक्षसी माता की संकर संतति, अधर्म और वैभव विद्वता और पाप, तपस्या और क्रूरता, कुलीनता और दुश्चरित्रता, महानता और दुर्जनता, ब्राह्मणत्व और राक्षसत्व जैसे विरोधाभासों का घोटाला बन कर रह गया है। रावण का व्यक्तित्व, कदाचित इसीलिए हनुमान द्वारा कहा गया था कि "यदि रावण ने अधर्म का मार्ग न ग्रहण किया होता तो वह सचमुच सारा त्रैलोक्य जीत सकता था।

इस प्रकार एक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व विरोधाभास की दलदल में फंस कर अपना चित्र बिगाड़ कर विवाद का विषय बन कर मौलिक मूल्य गंवा बैठा।

ढालपुर मैदान, कुल्लू

●★●

ऊना नगरी के प्रसिद्ध देव-स्थान

—खुशी राम शर्मा

त्रिगर्त प्रदेश के अन्तर्गत शिवालिक पहाड़ियों की पूर्वी और पश्चिमी शृंखलाओं का मध्यवर्ती भाग ऊना घाटी के नाम से सब जगह जाना जाता है। यह भाग सन् १९६६ ई० से पहले पंजाब प्रान्त के जिला होश्यारपुर की एक तहसील थी। १९६६ ई० में प्रदेशों के पुनर्गठन के समय यह भाग (कुछ इलाका छोड़ कर) हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित हुआ, कुछ वर्षो तक कांगड़ा जिले का उपमण्डल रहने के पश्चात् सन् १९७२ ई० में इस भाग को एक पृथक जिले का रूप मिला तथा इस भाग के मुख्य नगर ऊना को जिले का मुख्यालय बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ऊना नगर सचमुच ही हिमाचल प्रदेश का प्रवेश द्वार माना जा सकता है क्योंकि पजाब की ओर से हिमाचल में प्रवेश करते समय यह सबसे पहले प्रथम और मुख्य नगर मिलता है। यह नगर भौगोलिक दृष्टि से जहां सुन्दर, सुरम्य एवं सुषमा-सम्पन्न है, वहां धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त पवित्र तथा भावात्मक एकता से भरपूर है। इस नगर के पश्चिम की ओर बहती हुई सोम भद्रा नदी लोगों को निरन्तर शान्ति, पवित्रता और कल्याण का संगीत सुनाती रहती है, इस नदी का बिगड़ा नाम अब स्वां पड़ गया है परन्तु ऋग्वेद में इस नदी का वर्णन 'स्वस्तु' और बाल्मीकि रामायण में 'सोम भद्रा' के नाम से किया गया है, दोनों ही शब्दों का अर्थ 'कल्याणकारी' है। पूर्व दिशा की ओर भाखड़ा-नंगल की मनोरम घाटियां विशाल सुविस्तृत हरे-भरे खेत अपनी अनुपम प्राकृतिक घटा से सभी के मन को आलंकित करते हैं।

कहा जाता है कि पहले इस नगर के स्थान पर एक सुनसान उजाड़ टीला था। सिखों के दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय में गुरु नानक देव के वंशज बाबा कलाधारी यहां आए थे, उन्होंने सोम भद्रा नदी के तट पर स्थित इस ऊंचे टीले पर तपस्या की थी। बाबा कलाधारी जी की समाधि नगर में आज भी बनी हुई है। वहां आज भी अनेक श्रद्धालु भक्त अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं और दूर-२ से लोग आकर प्रार्थना करके मनोरथों की सिद्धि प्राप्त करते हैं। बाबा कलाधारी जी के वंश में बाबा साहिब सिंह जी हुए, जिन्हें महाराजा रणजीत सिंह, जो कि बाबा जी के परम भक्त थे, ने ११७ ग्रामों की एक जागीर प्रदान की और उनके द्वारा ऊना नगर की रचना सामरिक महत्व के अनुकूल (एक दुर्ग के समान) करवाई। आज भी यहां पुराने भवन (किले में) बाबा जी के वंशज निवास करते हैं।

यद्यपि ऊना नगर में कई मन्दिर गुरुद्वारे, समाधि-स्थल तथा धार्मिक स्थान हैं, जिनका अपना-२ गौरव, महत्व और इतिहास है। अतः उन सभी का एक लेख में एक बार ही वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है इसलिए प्रस्तुत लेख में इस नगरी के प्राचीन एवं एतिहासिक दो मन्दिरों का ही वर्णन किया जा रहा।

शिवद्वाला (शिव मन्दिर) :

नगर की महिमा और धार्मिक गरिमा का परिचायक यह शिवद्वाला नगर के मध्य में स्थित है। लगभग १५० वर्ष (जैसा कि लोगों का विचार है) पहले बना यह मन्दिर समय के कठोर आघातों, सर्दी, गर्मी, वर्षा, आन्धी को सहन करता हुआ आज भी उसी स्वाभाविक रूप में विद्यमान है, जैसा अपने निर्माण के समय था, अतः प्राचीनता के साथ-२ यह मन्दिर वस्तुकला का भी सुन्दर नमूना है। इसके उन्नत शिखर पर शोभायमान कलश नगर की कीर्ति को आकाश तक पहुंचाता प्रतीत होता है। मन्दिर के भीतर सर्पाकार जलहरी में विराजमान फूलों, बिलपत्री और त्रिपुंडरीक से विभूषित शिवलिंग सदैव भक्तों की मनोकामनाएं पूरी करता है। बाहिर शिवलिंग के ठीक सामने खड़ा नंदीगण (जो पहले सैल पत्थर का, अब सीमेंट का बना हुआ है) निरन्तर अपने आराध्य देव के ध्यान में मग्न रहने का उपदेश देता है। चारों ओर सुसज्जित गणेश, पार्वती तथा दूसरे देवताओं की सुन्दर कला कृतियां सुरपुर का दृश्य उपस्थित करती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व इस शिवद्वाला की सीमा के भीतर पूर्व की ओर गीता भवन का निर्माण किया गया है, जिसके निर्माण में नगर के श्रद्धालु, सनातन धर्मी एवं गृहस्थी श्री हरिकृष्ण जैतिक तथा श्री गुरदास रामपुरी की प्रेरणा और परिश्रम का सहयोग रहा है। गीता भवन के अन्दर वंशी बजैया मनमोहन कृष्ण और राधा की संगमरमर की मूर्तियां सुशोभित हैं, जिन्हें नगर के ही दानवीर श्री आसरामल पुरी सेवानिवृत निजी सचिव, लोक सभा अध्यक्ष ने मन्दिर के लिए भेंट की, बाद में उन्होंने दश अवतारों की संगमरमर की बनी सुन्दर मूर्तियां स्थापित करवाकर वहां की शोभा को चार चांद लगा दिए।

इसके पश्चात नगर के एक अन्य दानी सज्जन श्री किशोरी लाल जी पुरी ने गीता भवन के साथ दुर्गा मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें सिंह वाहिनी; दुर्गा माता की विशाल मूर्ति की स्थापना करवाकर भगवती दुर्गा के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया। दुर्गा मन्दिर के साथ ही साधु महात्माओं के विश्राम के लिए स्थान बना हुआ है। बीच आंगन में यज्ञशाला भी बनी हुई है। जहां नवरात्रों तथा अन्य त्यौहारों पर हवन-यज्ञ किया जाता है। उत्तर की ओर एक धूना है जो पहले कच्चा था, अब पक्का कर दिया गया है।

इस शिवालय के सम्बन्ध में लोगों में एक विश्वास पाया जाता है कि जब कभी वरुण देव नाराज हो, अर्थात् वर्षा न बरसे, तो यदि श्रद्धालु जन मिलकर शिवलिंग पर जलधारा करें, तो अवश्य वर्षा हो जाती है। इस बात की पुष्टि कई बार की जा चुकी है। माताएं शिवलिंग पर जल, बिलपत्री नहीं चढ़ाया करती हैं। इस मन्दिर में प्रति वर्ष शिवरात्री का पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है शिवरात्री के दूसरे दिन बड़ा भारी यज्ञ और भंडारा होता है।

सत्यानारायण मन्दिर :

पूर्व वर्णित शिवद्वाला की सीमा परिधि से बाहिर साथ ही भगवान सत्यानारायण का प्राचीन मन्दिर है। यह मन्दिर शिवद्वाला की तरह बहुत प्राचीन माना जाता है जिसका ठीक पता पुरातत्त्व विभाग वाले ही बता सकते हैं। पहले इस मन्दिर में सत्यानारायण की स्वर्ण मिश्रत धातु से बनी अत्यन्त विशाल मूर्ति सुशोभित थी, जिसे किसी ने चुरा लिया था। अब प्राचीन मूर्ति

राधाकृष्ण की युगल जोड़ी मन्दिर की शोभा बढ़ा रही है, जिसके दाहिनी ओर लक्ष्मीनारायण की मूर्ति और बाईं ओर संकटहरण गणेश की मूर्ति विराजमान है। प्रतिदिन अनेक भक्तजन मन्दिर में आते हैं और भगवान सत्यानारायण के चरणों में श्रद्धा-सुमन चढ़ा कर अपने जीवन को सफल बनाते हैं। हर पूर्णमाशी और संक्रांति के दिन मन्दिर में भगवान सत्यानारायण की कथा तथा महीने में दोबार एकादशी की कथा होती है। यहां जन्माष्टमी भी बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। दिवाली के दूसरे दिन भगवान राम के आगमन पर अन्नकूट यज्ञ (भण्डारा) किया जाता है। श्री सोहन लाल जलगर सनातन धर्मी की प्रेरणा से बुध पूर्णिमा के दिन भी विशाल सत्संग का आयोजन किया जाता है जिसमें सैकड़ों श्रद्धालु भाग लेते हैं।

आजकल मन्दिर में पंडित भगत राम जी पूजा का कार्यभार सम्भाले हुए हैं, इनमें से पहले इनके पिता पंडित देवकी नन्दन जी ने लगभग ४० वर्ष इस मन्दिर की सेवा की, उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने ३५ वर्षों में १८ पुराण की कथा बांची। वे हर रात दो घण्टे कथा बांचते थे। वर्ष के पश्चात् कथा का भोग डाला जाता था। उनके द्वारा की गई कथा सुनकर लोग अपना धन्य भाग समझते थे।

इन दोनों मन्दिरों के मध्य शिवद्वाला के मुख्यद्वार के बाहिर एक प्राचीन कुंआ है जोकि ६० हाथ (३० गज) गहरा है। यह कुंआ भी उतना ही प्राचीन है जितना सत्यनारायण मन्दिर। कुँए का पानी अत्यन्त शीतल और मधुर है। इतना गहरा कुंआ खोदना मानव बुद्धि का चमत्कार ही माना जा सकता है।

इस प्रकार के देव मन्दिर जहां ज्ञान, भक्ति और श्रद्धा की त्रिवेणी का संगम स्थान है वहां वास्तुकला, भवन निर्माण कला और मानव बुद्धि कौशल का अद्‌भुत नमूना भी है। ये कितने प्राचीन है अथवा आधुनिक समय में इनका कितना महत्त्व है इस संदर्भ में विशेष जानकारी देने के लिए ये स्थान पुरातत्व विभाग, हिमाचल प्रदेश की सहायता की अपेक्षा रखते हैं। अतः इन देव स्थानों के भवनों के जिर्णोधार के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता है।

राजकीय महाविद्यालय, ऊना
हिमाचल प्रदेश

सूरमा होकू रावत का विस्मृत जन आन्दोलन

—रूपकुमार शर्मा

वर्तमान सिरमौर हिमाचल प्रदेश का एक जिला है। किन्तु १९४८ में हिमाचल प्रदेश बनने से पूर्व यह प्राचीन काल से राजतन्त्रीय रियास्त थी। इस रियास्त का पर्वतीय रियास्तों में एक विशिष्ठ स्थान था। इसकी भूमि मारकण्डेय ऋषि की तपो भूमि रही है। विष्णु के १६वें अवतार श्री परशुराम जी भी यहीं पैदा हुए। यह भूमि कपिल ऋषि की कर्मभूमि रही है। यह रियास्त अम्बाला से ६० किलोमीटर, देहरादून से 95 किलोमीटर, चण्डीगढ़ से 75 किलोमीटर और शिमला से ११० किलोमोटर की दूरी पर प्रकृति की अनुपम छटा और अपार नीति को अपने में समाए हुए विद्यमान है। यहां के लोगों का चरित्र और उपलब्धियां पर्वतीय रियासतों में अपना अनुपम स्थान रखती हैं किन्तु उनकी उपलब्धियां अंधेरे की गर्त में छिपी पड़ी हैं, जिन्हें प्रकाश में लाने का कार्य नगणय हुआ है। इसी कमी को पूरा करने के प्रयास हेतु प्रस्तुत है, सिरमौर के जन-आन्दोलन की प्रथम कड़ी।

यहां के निवासी स्वतन्त्रता प्रिय, निर्भीक और अन्याय के विरूद्ध आवाज बुलन्द करने में कभी पीछे नहीं रहे भले ही उसका परिणाम कुछ भी निकला हो। प्रत्येक जन आन्दोलन में व्यक्ति विशेष और जन सहयोग का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस आन्दोलन में सूरमा होकू रावत और सिंगटा की वीरता और कुर्बानी का इतिहास छिपा है।

यह बात लगभग १६८० ई० की है जब औरंगजेब का काल था और मुगल काल में मुगलों का पहाड़ी रियासतों के साथ गहरा सम्बन्ध था। मुगल सम्राट पहाड़ी रियासतों के आन्तरिक मामलों में बहुत कम हस्तक्षेत करते थे क्योंकि वे जानते थे कि पर्वतीय राजा उनकी सत्ता के लिए कोई गम्भीर चुनौती नहीं हैं। सिरमौर में उस समय महीप्रकाश उर्फ बुद्धप्रकाश का बारह वर्ष राज्य करने के बाद अल्पावस्था में देहान्त हो गया और उनके बाद उनका नाबालिक पुत्र जोगराज या भारतप्रकाश उर्फ मैंहन्दीप्रकाश के नाम से सिरमौर के सिंहासन पर बैठा। औरंगजेब ने रवि ११०६ हिजरी में इसको शाही फरमान द्वारा खिल्लत प्रदान की और सिरमौर का शासक बनने की मान्यता दी। मैंहदीप्रकाश की अल्पायु होने के कारण शासन का भार उसके चतुर किन्तु अत्याचारी मन्त्री दोलू मेहता के हाथ में आ गया। दोलु मेहता नाबालिग राजा के पिता के अधीन भी मन्त्री पद पर असीन रहा और नए राजा पर भी हावी रहा। वह मनमाने ढंग से शासन करने लगा। उस समय राजा प्रजा से कर लेता था लेकिन प्रजा हितकारी कार्य उसकी इच्छा पर निर्भर थे। राजा और प्रजा के बीच गहरा अन्तर था, लोग अशिक्षित साधारण और गरीब थे। राजा के राज में वे आस्था रखते थे। किन्तु अत्याधिक मनमाने और बढ़े हुए करों के बोझ में दबे पड़े थे। दोलू मेहता लोगों से कर

वसूल करने के लिए कई अनुचित तरीकों का प्रयोग करने के लिए दृढ़ संकल्प था। जो व्यक्ति कर अदा न करते उन्हें कठोर सजाएं दी जाती थीं। सजा के तौर पर घर के मुखिया के सिर पर एक मन का पत्थर रख दिया जाता था और इसे नंगा उस बोझ को उठाए हुए खड़ा रखा जाता था। अगर वह फिर भी कर न दे तो उसे कारावास में डाल दिया जाता था जहां उसे अनेक यातनाएं दी जाती थीं। लोग कर देने में लाचार थे क्योंकि उनकी आय का कोई साधन न था। और भूमि भी उन्हें इतना नहीं दे पाती जिससे वे कर को दे पाते।

उसी समय घण्डूरी नामक गांव में एक होकू रावत नाम का मुखिया था। यहां का गांव कई गांवों का मुखिया था। यहां के लोग अपने आप को मियां कहते हैं। तथा अपने आप को अन्य जातियों से उच्च समझते थे। होकू अपने बाहुबल और जन सेवा के कारण लोकप्रिय था। उस समय कर अनाज के रूप में लिया जाता था और राजा की ओर से हरिपुर, कुदौन, कुपड़, लानाचैता, कोट, चनागल और चाड़ग में अन्न के भण्डार थे। यहां पर कर के रूप में इकट्ठा किया हुआ अन्न जमा किया जाता था। उन्हें लाने और ढोने के कार्य के लिए बेगार ली जाती थी। इसका कुछ भाग नाहन पहुंचाया जाता था और अकाल पड़ने पर भारी मूल्य पर स्थानीय लोगों को बेचा जाता था। लोगों ने होकू से अपनी दर्द भरी कहानी सुनायी जिससे होकू का दिल पिघल गया। होकू रावत उनकी बात राजा तक पहुंचाने और न्याय दिलाने के लिए तैयार हो गया। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए गांव के लोगों ने उसे पूरी सहायता और समर्थन की प्रतीज्ञा की।

जब दोलू मेहता को इस बात का पता चला कि लोग उसके विरोधी हैं और संगठित होकर उसके विरुद्ध मोर्चा बनाने की योजना रखते हैं जिसका नेतृत्व होकू मियां कर रहा था तो उसे बड़ा क्रोध आया। इस संगठन को समाप्त करने के लिए उसने ५०० व्यक्तियों की सेना घण्डूरी के लिए रवाना कर दी। सेना को आदेश दिए गए कि होकू को बन्दी बनाया जाए और उसकी सम्पत्ति जब्त तथा नष्ट कर दी जाए। जब यह सेना नाहन से चली जो घण्डूरी से ६० मील की दूरी पर है तो होकू के किसी हितैषी ने गांव से गांव आवाज देकर दो घण्टे से कम समय में यह संदेश घण्डूरी तक पहुंचा दिया। होकू ने अपना परिवार सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया और स्वयं सेना से मुकाबला करने का उपाय सोचने लगा।

जब-जब कभी मानव गहरे संकट से घिरा हो तो उसे भगवान की दया और सहायता की सबसे पहले याद आती है। उस समय देवा मानल में एक प्रसिद्ध शिरगुल (शिवजी) का देवालय था जो लोगों की आकांक्षाओं का प्रतीक था। कहा जाता है कि सत्य मन से अराधना करने पर यहां मन की मुराद पूरी हो जाती है। आज भी यह प्रसिद्ध मन्दिर विद्यमान है जहां हजारों श्रद्धालु जाते हैं। होकू रावत ने यहां जाकर शिरगुल देवता की अराधना की और देवता से दोलू से मुकाबला करने की शक्ति मांगी। उसने देवता को बकरे की बलि चढ़ाई और देवता ने उसे वरदान दिया कि उसकी विजय होगी। देवता के प्रताप और वरदान से उसे नई शक्ति और प्रेरणा मिली। इसी स्थान पर (देव मानल) में उसने कई गांवों की एक खुमली (जन सभा) बुलाई जिसमें कई जन जातियों के लोगों ने अपने मुखिया सहित भाग लिया। इन मुखियों में कोटी धमान से मुगलिया, गनोग से सुदामा, रजाना से धरता, पजवान संगड़ाह से संघदई, लुधियाना से काल्पू, अन्धेरी से काढ़ो, सैंज से बाजो, चौरास से सामा, शोउ से देवना, नोहरा से मांगतू, थोग से लच्छू, बनोग से

भानू, थांमला से महाटा, भुटली मानल से जावो, भराड़ी से लाडिया और मानल से बिरखा आदि कुछ इने-गिने मुखिया शामिल हुए। इन ग्राम मुखियों की बैठक देवा मानल के शिरगुल मन्दिर के प्रांगन में सम्पन्न हुई और सर्वसम्मति से दोलू मेहता के अत्याचार व अन्याय के विरुद्ध एक होकर मुकाबला करने की 'लौटे लून' (पानी में नमक डाल कर यह कहते हुए कि जो अपने वादे से पीछे हटेगा वह इस तरह गलेगा जैसे पानी के लोटे में नमक) कसम खाई। होकू रावत ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह उन्हें नाहन जाकर न्याय दिलाएगा।

इस समय तक राजा की सेना घण्डूरी पहुंच चुकी थी और आते ही घण्डूरी की जांगी (गांव के चारों ओर पत्थरों से बनी ऊंची दीवार ताकि रात के समय अचानक कोई शत्रु गांव पर हमला न कर सकें) पार करके गांव के अन्दर प्रविष्ट हो गई और दीवार का मुख्य द्वार बन्द कर दिया गया और लोगों को कड़ी चेतावनी दी गई कि अगर किसी ने दरवाजे खोलने का प्रयत्न किया तो उसका परिवार मौत के घाट उतार दिया जाएगा। उन्होंने होकू को वहां न पाकर यही समझा कि वह डर कर सपरिवार भाग गया है। इस प्रकार थकी हारी सेना रात को निश्चिन्त होकर गहरी नींद में समा गई।

उधर होकू अपने साथियों सहित घण्डूरी की ओर चले जो ४ मील के फासले पर देवा मानल के ठीक सामने पड़ता है। लोगों के पास कोई हथियार नहीं थे। अतः उन्होंने परम्परागत युद्ध हथियार डांगरा और लाठी से सेना से युद्ध करना सुरक्षित नहीं समझा। अतः उन्होंने राजा की सेना के हथियार हथियाने की गुप्त योजना बनाई ताकि सेना को निहत्था करके भगाने पर मजबूर किया जाए और उनके हथियारों से उनका मुकाबला किया जा सके। होकू तथा उसके साथियों की यह योजना सफल रही। उन्होंने रात के अन्धेरे में जब सेना गहरी नींद में सोई हुई थी चुपके से दीवार फांद कर सेना के हथियारों पर कब्जा कर लिया। हथियारों पर कब्जा करके उन्होंने सेना को लड़ने के लिए ललकारा। जब सेना हड़बड़ा करके जागी तो उन्होंने अपने हथियार न पाकर सेना में घबराहट और भगदड़ मच गई। उन्होंने होकू के साथियों से हथियार छीनने का प्रयत्न किया किन्तु इस मुठभेड़ में अधिकतर सैनिक काम आए और होकू व उसके साथियों को अद्भुत सफलता हाथ लगी। उन्हें हथियार मिले और इससे बढ़कर उन्हें नया उत्साह मिला। अतः उन्होंने निश्चय किया कि नाहन चल कर राजा को वास्तविकता से परिचित करवाया जावे। दोलू मेहता का घमण्ड चूर कर दिया जावे और नाहन में कारागृह में सड़ते हुए अपने लोगों को मुक्ति दिलाई जावे। यह वीर गाथा एक लोक गीत में आज भी दिवाली को बड़े उत्साह और उल्लास के साथ गाई जाती है। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

होकू लागी सिंगटे मियां नोइणी दी बाई।
हाडो आणो एकाइ नोइणी के जाई॥
बाज लो बाज लो बाजो गोईरा बाणा।
राजा गिया सोमाई हुआ दोलू मोहते रा जाणा॥

होकू मियां को नाहन जाने की सनक सवार हुई कि एक बार नाहन अवश्य जाना है राजा के स्वर्गवास हो जाने से दोलू मेहता मनमानी कर रहा है।

इस घटना के बाद होकू अपने साथियों सहित जिनकी संख्या लगभग ५०० थी घण्डूरी से चल पड़ा। चलते समय वह अपनी प्राण प्यारी मातृ-भूमि और खेत जिनके साथ उनका गहरा सम्बन्ध था उन पर एक नजर डालता है :—

बाटो बौटदे मियां पाछु होला हेरो।
ठाई छुटी घुण्डोरी मियां कोलियों री सेरो ॥

राह चलते मियां मुड़कर पीछे की ओर देखता है और उसे ऐसा लग रहा है कि घण्डूरी की मातृभूमि और कालमों के खेत उससे जुदा हुए जा रहे हैं।

आई गोई मियां तेरी डुबनो री बुधो।
भत छुडो जीरी झिझली रो झोटड़ी रो दूधो।

मियां तेरे डूबने वाली बुद्धि तुझ पर सवार हो गई है और तुझ से जीरी वाले चावल और जवान भैंस का दूध छुटने जा रहा है।

चलते-चलते वह जमटा पहुंच गया और जाते ही सर्वप्रथम जमटे की प्रसिद्ध सिगरा देवी के मन्दिर में जाकर अराधना करने लगा।

नादा रोआ बोदा मियां जोमटे खे जाई।
जोमटे री देवी लोई मियां ए शाई।
साचों बुलो देविए का मुनो दो तेरी।
जीता आउगा भरतो ताखे देउं छेली।

चलते-चलते मियां जामटे पहुंचा और वहां जाकर देवी से पूछने लगा कि देवी सचमुच बताना कि तेरे मन में क्या है। अगर मैं नाहन जाकर जंग जीत गया तो तुझे बकरा चढ़ाऊंगा।

जोमटे री देवियों शुणों ने बुणो।
लोटा ढाला पानी रा बकरा न धुणो।

जमटे की देवी कुछ न सुने। एक लोटा पानी गिराने पर भी बकरा न कांपा। (बकरे के कांपना का अर्थ है कि देवी को भेंट स्वीकार है)।

तांबी रोई रावता ताबे राजपूती आई।
लाई जूते रावतो देवी दो लाई।
सेजे कारे देविए मोनो भाउले तेरे।
राजा सुती भारतो जीती लाउणों मेरे।

तेरे में मियां राजपूती सनक जागी और मियां ने देवी को जूते की मारी और कहा देवी तू वह करवा जो तेरे मन में आवे मैं राजा के साथ जंग अवश्य जीतूंगा।

वहां से नाहन सामने दीखता है और जब वे उतर रहे थे तो उन्हें तुडेउले का हाट मिला और उनसे होकू नाहन की खबर पूछने लगा।

बाटो मेटो ओदमों मियां टुड टुडेउलिया री हाटो।
लांदे बया न तुएं हाटियों नोइणी री बातो।

आधे रास्ते में उन्हें टुडेउलिया (इलाके का नाम) हाट मिला और उनसे पूछा कि वह नाहन की खबर सुनाए।

बातो जाणी नोइणी री मियां जाई रोइली खुटी।
नोइणी पाकी रोई भीतरी दोलू मोहते री रोटी।

नाहन की बातें तो मियां बड़ी खोटी हैं। नाहन के अन्दर दोलू मेहते का राज है।

नाहन के समीप पहुंच कर शियापुर बावड़ी जहां से रानी और महल में पानी जाता था और जहां से राजे के अलावा कोई पानी नहीं भर सकता था वहीं बैठकर सत्तु खाने लगे।

जांदा लागा बोंदा मियां शियापुरी बाई।
बांई गाशी मियां ए सातु लबे खाई।
जुठे सिउठे सातु लुए बांई उदे पाई।

शियापुर बावड़ी पर पहुंच कर मियां सत्तु खाने लगा और जूठे और सुच्चे बावड़ी में डालने लगा।

जब उसके पहुंचने का समाचार दोलू मेहते को लगा तो उसने आत्मरक्षा की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं उसने महल और खजाने पर पहरे बिठा दिए। होकू के आगमन के समाचार सुन कर सारा शहर भयभीत था।

दूल लागा रावतो होकू रा डोरो।
बाला थिया राजा साहिबा, उबा गोदी दा कोरो।

दोलू को होकू रावत का डर लगा और नाबालिग राजा को गोदी में उठाने लगा।

नाहन पहुंच कर होकू ने चौगान में डेरा डाल दिया और अपने कुछ साथियों के साथ दाहिने हाथ सिंगटा साथी को लेकर दोलू मेहता से मिलने राजदरबार में गया। वहां जाकर वह शान्तिप्रिय ढंग से कैदियों की रिहाई चाहता था और दोलू मेहता से अत्याचार समाप्त करने की बात करना चाहता था।

तोबे लया सिंगटा मियां बरादुवारी दा जाई।
भेंट राज के भुरो पाई जय दिया शाई।

होकू रावत और सिंगटा के नमस्कार का उत्तर न देकर दोलू मेहता ने पीठ फेर ली। समझौते के स्थान पर उसने कड़ाई का रूख अपनाया और गालियां देने लगा जो होकू को सहन न हुआ।

दोलू बोलो मोहतेया नासोमझी री बातो।
गाली देला जें मुखे काटी पाणी जातो।

दोलू मेहता नसमझी की बातें करता है। होकू ने कहा अगर तूने गाली दी तो तेरी जीभ काट दूंगा। वह गुस्से से तमतमाता स्वयं कैदियों को छुड़ाने चल पड़ा। जेल जाकर कैदियों ने उसे यातनाओं की गाथा सुनाई। उनके साथ दुर्व्यवहार होता था। उनके नंगे शरीर पर गर्म तेल का छिड़काव किया जाता था। हर प्रातः काल ठण्डे पानी से नहलाया जाता था और नहाने के उपरान्त गोल पत्थरों के गोले पर नंगे और दोनों कान पकड़ते खड़ा होने को कहा जाता था। अगर पत्थर हिलता तो डण्डे मारे जाते थे। उन्हें जानवरों से बदतर खाना दिया जाता था। उन्हें शांउक (एक प्रकार का अनाज) की रोटी जिसमें आधा आटा और आधा नमक मिला हो, दी जाती थी। उनके आंसुओं के साथ कई की दुःखी हालत से होकू और उसके साथियों का कलेजा पसीज गया। होकू और उसके साथी पहरेदारों पर टूट पड़े और उन्हें मारकर सभी कैदियों को मुक्त करा दिया। उनकी बेड़ियां काट कर रातों रात नावणी नाम के गांव में पहुंचा दिया जो धारटी धार के नाहन से ११ मील दूर है। दोलू मेहते ने अब चालाकी से काम लेना चाहा और ऐसा दिखाया कि वह समझौते के लिए तैयार है और उसने होकू को अकेले प्रातः दरबार में बातचीत के लिए बुलाया। अपने कपट को छुपाने के लिए होकू की फौज को पक्के जोहड़ की सराय में ठहराया जो आज भी मियां की सराय के नाम से प्रसिद्ध है और राशन के लिए अन्न और बकरा दिया।

गुप्त रूप से दोलू ने होकू का मुकाबला करने के लिए खेड़ी नामक स्थान से १८ रांगड़ बुलाए यह स्थान नाहन से १३ मील दूर है और होकू को अकेले बुलाकर उसे मार देने की योजना बनाई।

प्रातः जब होकू बुलाने के अनुसार दरबार में उपस्थित होने के लिए गया तो केवल तीन व्यक्ति होकू, सिंगटा चौकरी और होकू रावत का भानजा माना अन्दर आने पर मुख्य द्वार बन्द कर दिया गया ताकि होकू के अन्य साथी अन्दर न आ सकें। होकू को अब दोलू की कारसतानी का पता चला तो उसने या तो अपने साथियों को आने की अनुमति चाही या भानजे को बाहर छोड़ देने को कहा क्योंकि वह भानजे पर अपने सामने वार करते हुए नहीं देख सकता था। दोलू ने दूसरी बात मान ली। भोले भाले लोग दोलू के चक्रव्यूह को न समझ सके। माना के बाहर जाते समय होकू ने कहा कि उसकी ओर से छोटे लड़के बाजो और इलाके के सभी साथियों को राम राम कहना।

इस संदेश के बाद होकू और उसका साथी सिंगटा जीवन मरण के अद्भुत और वीरतापूर्ण संघर्ष के लिए तैयार हो गए। अठारह रांगड़ भी इन दोनों के साथ जुझ गए किन्तु कहां किराये पर लिए गये आदमी और कहां अपने मातृ-भूमि के सच्चे लाल। युद्ध करने की प्रेरणा से ओत-प्रोत और अन्याय के विरूद्ध सच्चाई के मार्ग पर चलने वालों के जोश परिणाम स्वरूप उन दोनों ने अठारह रांगड़ों को हराकर दम लिया। उन्होंने अन्य उपस्थित लोगों को ललकारा 'अगर किसी में दम हो तो सामने आयें'। इस पर हिरदा और जुलफिया नाम के दो व्यक्ति मैदान में उतरे।

होकू गिम्रा रावतो तोबे मुजरे दा जाई।
तोबे गिया नेगी जुलफिया सामणे म्राई।

होकू भीड़ में चला गया और फिर मुकाबले में नेगी जुलफिया आया। किन्तु इन्हें यमराज के द्वार पहुंचा कर होकू और सिगटा ने दम लिया। इन पर विजय पाने पर होकू अपनी खण्डा (तलवार) हवा में घुमाने लगा। उसकी आंखों से अंगारे बरस रहे थे और भुजाएं फड़फड़ा रही थी उसकी तलवार उसका साथ दे रही थी। फिर दोलू मेहता ने नामी लड़ाका जड़गा नेगी को मैदान में उतारा लेकिन यह भी कुछ करने से पहले ही पहली वार में धरा पर गिर पड़ा। इसके बाद मिजरा ख्वास जोश में कूद पड़ा किन्तु सूरमा होकू ने इसका जोश भी खत्म कर दिया। अब दोलू क्रोध से कांप रहा था और अन्त में उसने अपने पुत्र सरगु को सम्बोन्धित करते हुए कहा "बेटा कुछ कर दिखाओ।" सरगु एक हाथ में तलवार और दूसरे में ढाल लेकर लड़ने आया, यह ढाल लोहे की बनी थी। होकू ऐसे औजारों से अनभिज्ञ था जब उसने गुस्से से तमतमाते भरपूर वार सरगू पर किया तो सरगु ने इसे ढाल पर रोक लिया। इस पर लग कर होकू की तलवार का आधा भाग टूट कर दूर जा गिरा। तलवार के बेबसी से सिगटा चौकरी होकू को बचाने का प्रयत्न करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। अब होकू टूटी हुई तलवार से लड़ता गया। उसने अपने मृत साथी की तरफ केवल एक बार हसरत भरी नजर से देखा और युद्ध में संलग्न हो गया। अब दोलू के चाकर भी लड़ाई में कूद पड़े किन्तु होकू अभी तक शेर की तरह दहाड़ रहा था। अचानक चालाक पठानिया नाम के बनिये ने होकू को कोठे पर से आवाज लगाई।

देखो होकू उवो गिम्रा लोगो दा खोई।
ईट मारी बाणिए लोउ लुहान गिम्रा होई।

जब होकू ने ऊपर की ओर देखा तो उस पर ईंटों के वार शुरू कर दिए गए। उनमें से एक ईंट होकू के माथे पर जा लगी और खून के फव्वारे छूटने लगे। होकू की आंख में खून भर गया। उसने एक हाथ से खून साफ करने की कोशिश की और दोलू मेहता की ओर लपका किन्तु उसका वार दोलू में न लगकर आंखों में खून भर जाने से एक खम्भे में लग गया। कई वर्षों तक खम्भे में उसकी तलवार का वार उस तीर की याद ताजी करता था। उसकी बेबसी का फायदा उठाकर रमसादेवी नाम के एक व्यक्ति ने होकू की गर्दन पर वार करके उसे प्राणहीन कर दिया।

होकू राउतो री पोडी ड्योढीगे लाशो।
तेसरी होम्रा बयालखे खे सूरगो बाशो।

होकू रावत की लाश ड्योढी के आगे गिर गई और दिन ढलने के समय उसकी मौत हुई। उसकी सेना दरबार के बाहर बेवस खड़ी थी किन्तु जब उन्हें होकू की मौत का पता चला तो बिना सेनापति के साधारणतया जैसे सेनापतिहीन युद्धों में भारतीय सेना ने साहस छोड़ा उसी गति को प्राप्त हुई।

होकू मरा नहीं वह लोक-गीतों में लोगों के दिलों और जजबात में आज भी जिन्दा है। लोग हर दिवाली को लोक-गीत (रासा) में उसे बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं। वह आज भी लोगों की धड़कन है।

मकान नं० एम-१६, आवास बस्ती नाहन-१७१००१
जिला सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)

महाराजा संसार चन्द की जन्म भूमि विजयपुर का सीता राम मन्दिर

–शशिकान्त शास्त्री

प्राचीन काल से ही हिमाचल प्रदेश को देव भूमि के नाम से पुकारा जाता है। यहां की चित्रकला तो इसका विशेष केन्द्र है। मेलों, त्यौहारों व अन्य सांस्कृतिक कार्य-क्रमों में अन्य प्रदेशों की तरह हिमाचल में भी अनेक विशाल और भव्य देवी-देवताओं के मन्दिर विद्यमान हैं और इसका पौराणिक नाम जालन्धर पीठ है। शिव पुराण और ब्रह्म पुराण में जालन्धर पीठ को बड़ा महत्व दिया गया है। यह क्षेत्र शिव शक्ति के क्षेत्र से प्रसिद्ध है।

यहीं ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर स्थित देवी मन्दिर हैं, जिनमें शिमसा, ज्वालामुखी, कांगड़ा, ब्रजेश्वरी, नैनादेवी, चिन्त्यपूर्णी, चामुण्डा जैसे पावन तीर्थ स्थलों के नाम आते हैं। प्रदेश की इस पवित्र भूमि में अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों में सुजानपुर में मुरली मनोहर का मन्दिर, जैसिंहपुर में जानकी नाथ, श्री लक्ष्मीनारायण और विजयपुर में सीता राम जैसे नाम अग्रगण्य हैं। प्रदेश में ऐसे भी मन्दिर हैं, जिनमें कई दिन तक शायद कोई झांकता नहीं, पर इनकी सुन्दर वास्तुकला और चित्रकला को देखकर सन्देह नहीं रहता कि किसी समय में उनमें नियमित रूप से बड़ी धूम-धाम से पूजा होती होगी, और उनमें आज भी ऐसे मन्दिर हैं, जिनके प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा है और यहां आकर मनोरथ पूरे करते हैं।

ऐसा ही एक मन्दिर तहसील पालमपुर से लगभग ४० किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण की ओर एक पहाड़ी पर स्थित है। जिसके चारों ओर दूर-दूर पुराने दुर्ग जो कि अब खण्डहर में बदल चुके हैं। उनके मध्य राजा विजय चन्द की राजधानी में बसा एक गांव है, और उसी भूमि को पवित्र करने वाला एक विशाल पुरातन सीता राम जी का मन्दिर दिखाई देता है। जहां की वास्तुकला और मूर्तिकला तो लोगों को विमुग्ध कर देती है। यह पवित्र भूमि साहित्य कला-प्रेमी महाराजा संसार चन्द की जन्म भूमि भी मानी जाती है। जिन्होंने सम्वत् १७६५ से १८१३ तक राज्य करके हिमाचल प्रदेश की संस्कृति को जीवित रखने के लिए भरसक प्रयत्न किये, जिसके प्रमाण हमें इन विशाल मन्दिरों की भव्य रचना को देखते ही मिल जाते हैं।

राजा बाणबट के वंशज राजा विजय चन्द हुए, जिनकी यह विजयपुर राजधानी थी। जो बड़े धार्मिक, सत्यवक्ता और दयालु थे। उन्होंने सन् १६०० में इस मन्दिर का निर्माण किया था। उस समय इस स्थान का नाम विजयपुर था, और बाद में बिगड़ता रूप विजापुर नाम से प्रसिद्ध हो गया।

किंवदन्तियों के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि जब यहां मन्दिर का निर्माण हुआ तो राजा को समस्य हो गई कि अब किस देवता की मूर्ति की यहां स्थापना की जाए। दिन-रात वह चिन्तित रहने लगा। वह रात को सोया हुआ था कि उसे स्वप्न में भगवान ने दर्शन देकर कहा कि यहां से कुछ दूरी पर व्यासा के किनारे जहां पवित्र जल बहता है उसमें एक काले रंग की चट्टान निकलेगी उसी से राम, लक्ष्मण, सीता, गरुड़ और हनुमान की मूर्तियां बना कर इस मन्दिर में उनकी स्थापना करो। राजा ने यह स्वप्न प्रातः सब को सुनाया और व्यास नदी के किनारे उस चट्टान को ढूंढने को कहा। ज्यों ही यहां से १० किलोमीटर दूर काथला नाम स्थान के पास पहुंचे जहां व्यासा का पवित्र जल अपार स्थिर रहता है। उस स्थान का नाम हारसी की सीमा के साथ जुड़ा है अर्थात् (हारसी+का+नीचा) नीचा को पहाड़ी भाषा में (थला) कहा जाता है। धीरे-धीरे आबादी बढ़ती गई और (का) हारसी का साथ छोड़कर थला शब्द से जुड़ गया। जिससे काथला नाम से प्रसिद्ध हो गया। अब हारसी और काथला नाम के दो बड़े गांव हैं। इसी स्थान से होकर व्यासा नदी बहती है। उसके एक किनारे पर रुके हुए गहरे पानी का अपार भण्डार है। इस स्थान से निकाले गये काले पत्थर से इन मूर्तियों का निर्माण करना। शर्त यह भी थी कि यह पत्थर यत्र-तत्र न फैंके जाएं और उसी स्थान पर बैठ कर मूर्ति का निर्माण हो। राजा ने मूर्तिकार बुलाये और उचित समय में ही सभी मूर्तियां बनकर तैयार हो गई। ऐसा भी कहा जाता है कि रात को ये मूर्तियां स्वयं पानी में चली जाती थीं और प्रातः किनारे पर होती थीं ऐसी अपार शक्ति इन मूर्तियों में विद्यमान है। उस समय से लेकर इस जगह स्नान करने का विशेष महत्व माना जाता है। काथला में एक शिव मन्दिर भी है। जो बाद में बनाया गया है। जहां शिवरात्री, निर्जला एकादशी जैसे धार्मिक पर्वों के अतिरिक्त नारियां श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को स्नान करके कृतार्थ मानती हैं। इस स्थान को सीता राम जी के मन्दिर की मूर्ति निर्माण के कारण से विशेष महत्व दिया गया है। ज्योंहि मूर्तियां बनकर तैयार हो गई, तो वे उठाई न जाएं, इतनी भारी थीं कि धरती से हिलें तक न।

राजा को बहुत चिन्ता हुई और इसी सोच में पड़कर उसकी नींद और भूख घटना शुरु हो गई। ज्योंहि एक रात वे सोये हुए थे, तो उन्हें पुनः स्वप्न हुआ और भगवान ने कहा हे राजा! हठ छोड़ो और धैर्य से काम लो। तुम्हारी राजधानी में एक वृद्ध ब्राह्मण जाति का है। उसको साथ ले जाकर इन मूर्तियों को लाया जा सकता है। कहा जाता है, ज्यों ही ब्राह्मण वहां पहुंचे कहने की देरी हुई "चलो भगवान उठो" मूर्तियां कम भार वाली हो गई और इस मन्दिर विजयपुर में स्थापित कर दीं। उनकी प्राण प्रतिष्ठा के लिए काश्मीर से वेद शास्त्रों को जानने वाले पंडित बुलाए तो राजा ने कहा कि मुझे कैसे विश्वास हो कि इन मूर्तियों में जीव आ गया। इसी बात पर राजा ने हठ करना स्वीकार कर लिया।

पंडितों ने राजा को बहुत समझाया परन्तु राजा ने एक न मानी। इतना भी उन विद्वानों ने कह दिया कि शास्त्रों के अनुसार आपके लिए साकार देखना हानिकार रहेगा। फिर भी राजा ने हठ नहीं छोड़ा और कष्ट सहन करना स्वीकार किया। पंडितों ने राजा को आदेश दिया कि आप श्री रामचन्द्र जी की छाती पर हाथ रखें, जब आपको विश्वास हो जाए तो कह दें। ऐसा कहते हैं कि ज्यों ही राजा ने राम की छाती पर हाथ रखा तो श्वास चढ़ते-उतरते मालूम हुआ और राजा

सोमसी

ने प्रसन्नता प्रकट की, उस समय के वातावरण को वेद मन्त्रों की ध्वनि ने इस भूमि को पवित्र बना दिया था। कुछ ही दिनों उपरान्त राजा का देहान्त हो गया। यह मन्दिर चार दिवारी से घिरा हुआ और विशाल सिंह द्वार से सुशोभित है। इस मन्दिर के भीतर ऊंचे सिंहासन पर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता, हनुमान जी की मूर्तियां विराजमान हैं। जिनकी नेत्र सज्जा बनाने के लिए मूर्तिकारों ने चांदी के चमकदार पत्रों से सजाया है। जिससे मूर्तियों को देखते ही श्रद्धालुओं का मन आकर्षित हो जाता है। इस मन्दिर के चारों ओर बाहर छोटे-छोटे बनाए गए स्थानों में अनेक छोटी-बड़ी देवी-देवताओं की काले रंग के पत्थर पर खुदी गई मूर्तियां थीं। जिनमें से अधिकांश अपना स्थान छोड़ चुकी हैं। कुछेक ने तो खण्डहर का रूप धारण कर लिया है। जिससे पहचानना भी मुश्किल हो जाता है, कि यह किस देवी-देवता की मूर्त्त हो सकती है। मन्दिर के बाहिर ठीक सामने दो विशाल हनुमान जी की मूर्तियां हैं जो अपना अलग-अलग महत्त्व रखती है।

ऐतिहासिक महत्व :

ऐसा कहा जाता है कि जिस समय मुगल वंश इस मन्दिर को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए आये तो इन मूर्तियों को मन्दिर के पीछे दबाया गया था, उसमें से गरूड़ की मूर्ति का कोई पता नहीं चला। और बाद में उस स्थान को पूर्ण करने के लिए यहां हनुमान जी की मूर्ति की स्थापना की गई। जिस समय अहिरावण को हनुमान जी ने मारा था, वही दृष्य इसमें दिखाया गया है और उसी के पीछे समतल भूमि में एक बहुत बड़ी और विशाल सिंदूर से लिपी हुई हनुमान जी की साक्षात और मनोरथ पूर्ण करने वाली यह मूर्ति इतिहास का स्मरण दिलाती हुई वर्षों से अड़िग खड़ी है, और इस कांगड़ा की पवित्र भूमि की रक्षा करती आ रही है।

इसके बारे में ऐतिहासिक घटना कही जाती है कि जिस समय मुगल वंशीयों ने त्रिगर्त कांगड़ा में तबाही मचा दी और प्रदेश के सभी मन्दिरों को गिराना और सुन्दर-सुन्दर बनी मूर्तियों को तोड़ना शुरु किया, और वे निरन्तर विजयपुर की राजधानी की ओर अग्रसर हो रहे थे, तो सभी लोग भय के कारण कांपने लगे। अनेकों मन्दिरों से पुजारी तक भाग गए या फिर उनको मार दिया गया। पहुंचती-पहुंचती यह बात यहां तक आ पहुंची। इस मन्दिर का पुजारी डर के मारे कांपने लगा। भूख और नींद बराबर उसका साथ छोड़ गई। अन्त में उसने भगवान के दरबार में ही प्राण त्यागना उचित समझा, और अड़िग होकर वहीं बैठा रहा। कहा जाता है, रात स्वप्न में पुजारी को भगवान ने दर्शन दिये और कहा तुम मत घबराओ। बाहर हनुमान जी खड़े स्वयं रक्षा करेंगे। परन्तु पुजारी को विश्वास नहीं हुआ कि यह पत्थर की बनी मूर्तियां कैसे मुकाबला करेंगी। जब मूर्तियां नहीं रहेंगी तो श्रद्धालु नहीं आएंगे और फिर मेरा व मेरे परिवार का निर्वाह कैसे होगा। अब भी इस मन्दिर में उसके वंशज ब्राह्मण प्रातः-सायं पुजा आदि करते हैं. और इस मन्दिर के चढ़ावे से ही अपना गुजारा करते हैं। ऐसा भी कहा जाता है, कि इस मन्दिर की सभी मूर्तियां मन्दिर के पीछे दबाई गई थीं। ताकि ये टूटने से बच जाएं। परन्तु हनुमान जी की मूर्ति को हाथ तक नहीं लगाया गया था। यह उसी स्थान पर रहने दी जैसा कि श्रीराम चन्द्र का आदेश हुआ था। जब मुगलों ने इस मन्दिर में भारी संख्या में प्रवेश किया तो सर्व प्रथम उन्होंने पंडित को बैठे देखा। उन्होंने उसे बहुत डराया-धमकाया और मन्दिर के बारे में पूछा तो पुजारी ने केवल बाहर खड़े शताब्दियों से विशाल हनुमान जी की मूर्ति की तरफ इशारा किया और कांपते हुए केवल इतना ही

कहा कि श्रीमान् जी जब से हम यहां आए हैं, केवल यही मूर्ति विराजमान देखी, औरों का हमें कुछ मालूम नहीं। इस मूर्ति का महत्व निराला ही है। १९०५ के भयंकर भूकम्प ने जब कांगड़ा की समस्त देव भूमि में तबाही मचा दी थी, तो उस समय यह मूर्ति कई बार धरती तक आई और अनेकों बार खड़ी हुई। इसमें थोड़ी भी आंच नहीं आई। एक बड़े विशाल पत्थर से बनी हुई यह मूर्ति है। जब मुगलों ने पुजारी की बात को सत्य मान लिया तो उन्होंने सबसे पहले हनुमान जी की मूर्ति को खण्डित करना शुरु किया। बाजू, सिर, कान सभी तोड़ डाले ज्योंहि हथियार से उनके नाक पर प्रहार किया तो उसी समय नाक के एक छेद से रंगड़ नाम वाले बहुत जहरीले मधु-मक्खी जाति के असंख्य जीव बाहर निकले और काल का रूप धारण करते यह एक-एक धर्म विरोधी तत्त्वों को काटते गए, डंक करते क्षण भर में वहीं लाशों के ढेर हो गए, और कुछेक इतस्ततः पागलों की तरह भागने गिरने लगे। ऐसा कहा जाता है, कि जब तक मुगल वंशों का सर्वनाश न हुआ तब तक यह जीव हनुमान जी के शरीर से निकलते रहे।

उस समय की भन तोड़ के कारण खण्डित हाथों को बाद में जोड़ा गया है, और उनके हाथ का वह खण्ड उनके चरणों के पास रखा गया है। जिसमें दोनों हाथों को जोड़ा हुआ है। जब सभी मुगलों का नाश हो गया तो राजा ने सबको विजयपुर से लगभग तीन किलोमीटर दूर जैसिंहपुर में एक सड़क के किनारे दबाया जिसका नाम **'मुंडियां दा टयाला'** प्रसिद्ध है। अब यह स्थान सड़क बन जाने के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। फिर भी यह एक ऐतिहासिक घटना को याद करवाता है। इसके चारों ओर आमों के विशाल पेड़ लगाये गये हैं। किसी भी घटना को लेकर चलें यह मन्दिर प्रशंसनीय है। यहां का स्थान मूर्ति कला और प्राकृतिक सुन्दरता की दृष्टि से भी योग्य समझा जाता है।

इस मन्दिर के पास बाहर एक बड़े पुराने चबूतरे पर एक महान पीपल का वृक्ष है, और उसी के साथ ही एक टूटती हुई दीवारों वाला मकान दिखाई देता है। जो किसी समय अच्छी संस्कृत पाठशाला के नाम से प्रसिद्ध था। यहां हिन्दी संस्कृत पढ़ाई जाती थी। जिसमें समीपस्थ और दूर दराज क्षेत्रों से छात्र आकर विद्या ग्रहण करते थे। क्योंकि उस समय पढ़ने के साधन इतने सुगम नहीं थे। इसके थोड़ी दूर एक बहुत स्वच्छ जल से परिपूर्ण तालाब है, जिसका जल मन्दिर के नीचे से निकलता है। बहुत रमणीय स्थल तथा उसमें तैरती हुई मछलियां अठखेलियां करती हुई नजर आती हैं, जिसको देखते कभी आंखें नहीं थकती।

राजधानी के अन्यत्र चले जाने के कारण काफी समय के बाद महारानी तारादेवी जी यहां आई क्योंकि उनकी भी यह जन्म भूमि थी। उन्होंने अपने कर कमलों द्वारा १९५८ ई० में इस मन्दिर के चारों ओर बिजली लगवाई और इसके सुधार तथा लोगों की सुविधा के लिए सराहनीय कार्य किए। अब तो पेयजल योजना के अन्तर्गत यहां नल द्वारा पानी उपयोग में लाया जाता है।

मन्दिर के पास ही राजकीय प्राथमिक पाठशाला है। जिसमें समीपस्थ गांव के बच्चे आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। मन्दिर के नीचे खड्ड से ऊपर आते ही मार्ग में एक बहुत बड़ा सिंहद्वार है। जहां थोड़ा विश्राम करने के उपरान्त यात्री चढ़ाई शुरू करते हैं। अब तो यह भी दुर्गों के साथ-२ गिरता जा रहा है। मन्दिर से बस सड़क का अन्तर लगभग दो किलोमीटर है। जितनी बसें हारसी पतन आती हैं, उनमें किसी भी बस में बैठ कर सीताराम की खड्ड में उतर कर पैदल चल करके

विजयपुर के मन्दिर पहुंचा जा सकता है। थोड़ी ही दूरी पर ब्यासा नदी बहती है और सामने ऊंचे-ऊंचे पर्वत जो मानो मूक भाषा में आसमान से बातें कर रहे हों। इस मन्दिर की चार दीवारी पर बैठकर चारों ओर के प्राकृतिक दृश्यों का नजारा लिया जा सकता है। धार्मिक मेलों तथा पर्वों के दिन इस मन्दिर में अपार भीड़ रहती है। दूर-दूर से लोग आकर भगवान के दर्शन करके श्रद्धा पुष्प अर्पित करते हैं। विशेष उत्सव जैसे शिवरात्री, बसन्त पंचमी, रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी जैसे व्रतों त्यौहारों के दिन यहां अत्यधिक शोभा देखने में आती है। इन पर्वों के अतिरिक्त अब तो प्रत्येक ग्रामीण घर में हुए किसी निजी उत्सव या किसी और कारण भी इस मन्दिर में आकर सीताराम के दर्शन करके कृतार्थ मानते हैं। वर्ष में दो बार फसल आ जाने पर सर्वप्रथम मन्दिर के लिए चढ़ावा रखा जाता है। और किसी भी शुभ दिन में आकर लोग अनाज चढ़ाते हैं, और कामना करते हैं कि हमारा भविष्य उज्जवल हो। किसी घर में शादी हो जाने के उपरान्त घर के सभी सदस्य वर और वधु को साथ लाकर मनौतियां करते हैं। और यदि किसी के घर पुत्र हो जाए तो मन्दिर में आकर प्रीतिभोज का आयोजन किया जाता है जिसे रसोई देना कहते हैं। मन्दिर में जाकर भजन कीर्तन करके फिर वहीं भगवान को भोग लगाकर स्वयं भोजन करते हैं। यह प्रथा पुरानी है। यहां भोजन बनाने के लिए बर्तन बगैरा उपलब्ध हो जाते हैं। यह मन्दिर भीतर से ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों को देखते रहें कभी मन नहीं उबता। "यादृशी भावना यस्य, सिद्धिभवति तादृशी।" यह कहना मैं उचित समझता हूं। कांगड़ा की देव भूमि की यह एक देन है।

कुछ सुझाव :

इस समय प्रदेश के धार्मिक स्थानों की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अगर सरकार इसका संरक्षण अपने हाथ में ले ले तो अधिक अच्छा प्रबन्ध और पर्यटकों के लिए केन्द्र बिन्दू बन सकता है।

हर तरह से यह सीताराम का मन्दिर देखने योग्य स्थान है।

राजकीय उच्च विद्यालय
मोलग, तहसील पालमपुर
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

हिमाचल में एक और पर्यटन स्थल – अर्की

–बद्री सिंह भाटिया

पर्यटन की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश का प्रत्येक स्थान अपनी-अपनी महता रखता है। हिमाचल प्रदेश में सर्द कालीन व ग्रीष्म कालीन दोनों तरह के पर्यटन स्थल हैं। यहां की राजधानी शिमला तो, अब ऐसा स्थान हो गया है, जहां वर्ष में कोई दिन ऐसा नहीं, जब यहां कोई पर्यटक न आया हो। पर्यटन की दृष्टि से कुछ क्षेत्र तो विकसित हो गये हैं, कुछ हो रहे हैं और कुछ ऐसे हैं, जो अभी भी विकसित नहीं हुए हैं।

शिमला से लगभग पच्चास किलोमीटर दूर पश्चिम की ओर अर्की नामक एक छोटा सा शहर है, जो आज पर्यटन की दृष्टि से काफी महता का है, परन्तु अविकसित है। जिलों के पुनर्गठन से पूर्व जिला महासू और अब जिला सोलन की अर्की तहसील का मुख्यालय है यह शहर। राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व यह बाघल रियासत के नाम से जाना जाता था। यहां के लोगों को 'बघल्याणे' इसी रियासत के नाम पर कहा जाता है।

अर्की जाने के लिए शिमला से प्रातः साढ़े आठ बजे एक बस तथा दिन में अपराह्न के बाद तीन-चार बसें जाती हैं, जो यात्रियों को अर्की छोड़ कर आगे चली जाती हैं। शिमला–मण्डी राज-मार्ग पर चलते शालाघाट नामक स्थान पर से एक दूसरा रास्ता सात किलोमीटर की लम्बाई का अर्की को जाता है। यह रास्ता पहाड़ों के बीच से होकर गुजरता है। इस रास्ते से गुजरते ऐसा लगता है, मानो अर्की बहुत दूर हो। पहाड़ों के आंचल में दबी सी, अर्की तहसील और वहां के बाजार का कोलाहल व मुर्गे की वांगें (आवाजें), अर्की की पहाड़ी सीमा पार करते ही सुनाई देने लगती हैं।

अर्की बस से उतरते ही, किसी भी व्यक्ति की दृष्टि एकाएक ऊपर उठती है और वहां के महलों का दृष्टावलोकन करती है। यही राज महल है। यहां से बाजार जो कि किसी समय बाघल रियासत का सब से बड़ा व्यापार केन्द्र था, दिखाई देता है।

पक्के पहाड़ पर बना राज महल अपने में एक है। इसकी बनावट की कल्पना करते ही उंगली दान्तों तले चली जाती है। इसकी छवि ऐसी है कि इसे अन्दर जाकर देखने को मन लालायित हो उठता है। कभी महाराजा सुरेन्द्रसिंह इस महल के दीवाने-आम में लोगों के मुकद्दमें सुना करते थे, यह एक क्षीण सी याद बन कर रह गई है, वहां के लोगों के लिए किसी से भी पूछने पर यही पता चल सकता है कि यह राजा के महल हैं। महल क्या है, एक बेमिसाल चीज। महाराजा के बैठने की जगह, उनके विहार, उनका अन्तःपुर, बस उस समय के राजसी ठाठ-बाठ की मात्र याद दिला कर रह जाता है। दीवारों पर की गई चित्रकारी और महल की कारीगरी वर्षों पहले के

कारीगरों, उनके कौशल की याद दिला कर रह जाते हैं। इस महल की एक चित्रकारी का दृष्य हिमाचल प्रदेश संग्रहालय में भी देखा जा सकता है।

अर्की बस स्टैन्ड से बाजार की ओर दृष्टि डालने से, अनेक गुम्बद दिखाई देते हैं। ये वहां पर विभिन्न मन्दिरों के हैं। अर्की मन्दिरों के लिए काफी प्रसिद्ध है। इतने ज्यादा मन्दिर, शायद कहीं भी नहीं है। बड़े मन्दिरों में यहां पर नरसिंह, शिव व लक्ष्मीनारायण के मन्दिर ही आते हैं। शेष मन्दिर कबिलों, महल्लों, जाति आदि में बन्टे हैं और एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हैं।

नरसिंह का मन्दिर राजा के समय में न्याय के लिए काफी प्रसिद्ध था। लोग अपनी सच्चाई की कसम खा कर नरसिंह देवता का कलश उठाते थे।

इस मन्दिर के साथ तालाब के एक किनारे पर शिव मन्दिर है और उसके सामने दुर्गा मन्दिर। बाजार के बीच सामने बरगद के पेड़ के नीचे एक और शिव का मन्दिर है। यहीं से नीचे जा कर एक ओर को लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है। किंवदन्ती है कि चम्बा के बाद इस मन्दिर का राज्य में दूसरा स्थान है।

अर्की बाजार के पूर्व-दक्षिण की ओर बीच बाजार से आगे जा कर वर्तमान पशु चिकित्सालय के थोड़ा आगे भी एक मन्दिर है, जो सुनार जाति का मन्दिर बताया जाता है। अभी हाल ही में इस मन्दिर की मुरम्मत आदि की गई, जिससे यह मन्दिर अन्य मन्दिरों की अपेक्षा कुछ अलग हो गया है। इस मन्दिर के समीप ठहरने के लिए एक सराय और आराम करने के लिए छायादार वृक्ष ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप को भूला देते हैं।

बस स्टैण्ड से आगे पश्चिम की ओर जाकर सामने एक बगीचा दिखाई देता है। प्लम का यह बगीचा वर्तमान राजा का है। इस बागीचे के बीच में एक मन्दिर है। यह मन्दिर राधा कृष्ण का मन्दिर है। आज यह मन्दिर यद्यपि अपनी क्षत विक्षत दशा में है फिर भी इसकी दीवारों पर राधा कृष्ण लीला पढ़ी जा सकती है। जगह-जगह प्लस्तर उखड़ने के बावजूद भी उस समय की चित्रकारी देखी जा सकती है। वहां के लोगों को यह ज्ञान नहीं कि वह मन्दिर कब बना, परन्तु जो राजाओं के समय को जानते हैं, वे आज भी कहते हैं कि वहां पर स्वयं राजा पूजा करने जाते थे। राधा-कृष्ण की मूर्ति भी नहीं है, बस खाली स्थान है, जगह-जगह टूटी हुई शीशे की कंकरें दिखाई देती हैं। इस ऐतिहासिक मन्दिर, को जिसका सम्बन्ध राजघराने से है, आज उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है और एक समय आ सकता है, जब कोई यह भी नहीं जानेगा कि यहां पर कभी कोई मन्दिर भी था।

यही नहीं, यहां के लगभग सारे मन्दिर मात्र एक आध को छोड़ कर सुनसान पड़े हैं कभी किसी मन्दिर में घण्टे बजने की आवाज अब एक हंसी का विषय बन गई है। लोग हंसते हैं घण्टों की आवाज पर।

पुजारी भी अपनी पूजा छोड़ चुके हैं। जब यह पूछा गया, तो एक पुजारी हिचकते हुए बोल पड़ा कि अब यहां पूजा करने वाले भी नहीं आते, शायद देवता ही यहां से उठ कर चले गये हैं।

प्लम के बागीचे के मन्दिर से ऊपर सीधे एक घना जंगल है । यह जंगल सकनी का है । सकनी नामक स्थान बहुत ही रमणीय स्थान है । यहां पर एक पहाड़ से निकला पानी है जो कि दैविक पानी के नाम से जाना जाता है । इस पानी के यहां से निकलने की एक कथा प्रचलित है ।

लूटरू महादेव (वर्णन बाद में) के मन्दिर में एक महात्मा हुआ करते थे । सकनी के जंगल में एक चरवाहा गांव वालों की गायें चराया करता था । बदले में वह उनसे रोटी व अन्य सामग्री लिया करता था । उसे पता था कि कितनी गाएं किसकी है । कुछ दिनों से उसकी गायों के झुण्ड में एक नई गाय भी चरने लगी, जिसके मालिक का उसे पता नहीं था । अपने परिश्रमिक में कुछ बढ़ौतरी की आशा से, एक दिन वह उस गाय के पीछे चल दिया ताकि उसके मालिक तक पहुंचा जा सके । गाय के पीछे चलता-चलता वह लूटरु महादेव की कन्दरा में जा पहुंचा । वहां पर एक महात्मा बैठे थे । महात्मा से चरवाहे ने अपनी एवजी के बारे में प्रश्न किया, तो महात्मा ने उसे मुट्ठी भर जौ दे दिए । चरवाहा जौ लेकर चल पड़ा । रास्ते में उसे ख्याल आया कि उसे मात्र मुट्ठी भर जौ ही मिले और कुछ नहीं मिला । कुछ रुष्ट व खिन्नता से उसने वे जौ के दाने सकनी नामक स्थान पर फैंक दिए । जब वह अपने घर पहुंचा और उसने अपनी चादर को किनारे रखा तो उससे एक अशर्फी छूटी । वह बड़ा हैरान हुआ । उसने सोने की अशर्फी को देखा और उसे दिखाने के लिए सुनार के पास चला गया । सुनार ने उसके गंवारपन को देख कर पूछा कि उसके पास और भी हैं, तो वह बोला कि उसके पास तो नहीं मगर वह जिन जौ से बनी है, वह सकनी के जंगल में फैंक आया है । दोनों वहां से चले और सकनी पहुंच कर जौ चुनने लगे । ज्यों-ज्यों वे जौ चुनते गए त्यों-त्यों वहां पर पानी बनता गया और फिर एक धारा पानी की बह चली । तदुपरान्त वे लूटरु महादेव की गुफा में गए तो वहां पर न तो गाय थी, न महात्मा । कन्दरा के आगे एक बड़ी सिला रखी पाई गई । आज भी इस गुफा के अन्दर बनी इस कन्दरा में वह सिला है ।

सकनी नामक स्थान पर आज एक मन्दिर है, घने छायादार वृक्ष और ठण्डा पानी मन को वहीं रहने की प्रेरणा देता है । बरसात के बाद और गर्मियों से पूर्व के समय के लिए यह एक सुन्दर पर्यटन स्थल बन सकता है ।

सकनी से आगे या महलों के पीछे से एक मार्ग लूटरु महादेव की ओर जाता है । राजा ने मन्दिर/गुफा तक जाने के लिए कोई रास्ता नहीं बनवाया, मगर वहां तक जाने वाली ८० पौड़ियां बनवा दी थीं। यह थका देने वाली पौड़ियां हमें एक विशाल गुफा में ले जाती हैं । यहीं लूटरु महादेव के मन्दिर की एक लम्बी गुफा है, बीच गुफा में ऊपर से सूर्य की कुछ किरणें गुफा में पड़ती रहती हैं । लाईम वाटर से बनी शिवलिंग की प्रतिमा पर एक घड़ेनुमा लम्बे पर्वत से चूने के पानी की वून्द-वून्द शिवलिंग पर गिरती रहती है ।

यहां पर प्रतिवर्ष शिवरात्रि को मेला लगता है, सैकड़ों श्रद्धालु अपनी मनोकामना व शिव के दर्शन के लिए यहां पर आते हैं । आज प्रबन्धकों की ओर से यहां पर पीने के पानी व प्रकाश के लिए बिजली की व्यवस्था कर दी गई है । परन्तु रास्ता अभी भी नहीं बना है ।

अर्की के दक्षिण के अन्त में एक संकरे रास्ते से कांटों और फुललकड़ी से कपड़ों को बचाते हम नीचे नाले में मूटलू नामक स्थान पर पहुंचते हैं । कभी इस जगह के लिए अच्छा रास्ता था ।

यहां पर शिव की प्रतिमाएं हैं व किंवदन्ति है कि सकनी का शेष पानी यहां पर निकलता है। कभी शहर के श्रद्धालु यहां पर स्नान किया करते थे। यह ऐसी जगह है, जिसे आज का नवयुवक शायद ही जानता हो, यदि जानता भी हो, तो उसे यह पता नहीं कि वह कहां पर स्थित है।

शिव का पुराना मन्दिर बिल्कुल टूट गया है। शिवलिंग, शिव की पत्थरों में घड़ी गई मूर्तियां चूने से बनी कई प्रकार की प्रतिमाएं ऐसा आभास कराती हैं, मानो यह अजन्ता की गुफा हो।

किसी समय शिवलिंग पर पानी के लिए रखा मिट्टी का पात्र लाइमवाटर से पत्थर में परिवर्तित हो गया है। किंवदन्ति है कि सिद्ध लोग वहीं पर अपनी सिद्धियां किया करते थे। यह एक दर्शनीय स्थान है।

अर्की में सायर का मेला प्रथम असौज को मनाया जाता है। यह मेला शहर के मध्य में एक बड़े मैदान में मनाया जाता है। यह मेला दो दिन का होता है। किसी समय यह तीन दिन का होता था। जिसमें प्रथम दिन राजा मुर्गों और मिढों की लड़ाई देखा करते थे। दूसरे दिन भैंसों की लड़ाई और तीसरे दिन कुश्तियां होती थीं। दूर-दूर से लोग आते थे और नाच गाने का भरपूर आयोजन होता था। कालान्तर में यह मेला दो दिन का ही रह गया है, इसमें से मुर्गों और मेढ़ों की लड़ाई अब समाप्त कर दी गई है। रात्रि को लोक नृत्य व गानों के स्थान पर कोई ग्रामीण नाट्य पार्टी या लोक सम्पर्क विभाग की ओर से सिनेमा व अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम ही होते हैं।

अर्की के आस-पास भी कई दर्शनीय स्थान हैं। जखौली नामक स्थान पर पांडवों के प्रवासकाल का बना बिना किसी सीमेंट व गारे के एक मन्दिर है जो भद्रकाली के नाम से जाना जाता है। पास ही में पानी का एक स्रोत है जिसे किसी नट ने अपने करतब से निकाला था। छायादार वृक्ष और स्थान की रमणीयता मन को मोह सा लेती है।

बणी देवी भी थोड़ा ही दूर है यहां पर प्रतिवर्ष प्रथम ज्येष्ठ को वन्य देवी का मेला लगता है, जो बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। वनों में बने ये प्राचीन काल के मन्दिर देखने में हमें यहां पर फैली तत्कालीन सभ्यता और उनकी देवताओं के प्रति आस्था का आभास कराते हैं।

अर्की से थोड़ा पीछे दानो घाट नामक स्थान पर 'भियूं गलोला' नामक पत्थर है जो किसी समय में भीमसेन द्वारा अपने प्रवास काल के दौरान हलोग नामक स्थान से गुलेल से फैंका गया बताया जाता है। यही नहीं आस-पास कुछ और भी पत्थर हैं, जो इसी प्रकार के हैं। परन्तु भियूं गलोला का स्वतन्त्र रूप से टिका होना एक चमत्कार ही कहलाया जाता है। किंवदन्ति है कि शिमला मण्डी सड़क के निर्माण काल के समय किसी अभियन्ता ने इसे गिराने के लिए मजदूर भेजे थे, तो वे भी इसे न गिरा सके।

अर्की के थोड़ा पीछे, स्यारन्ड नामक स्थान के पास एक झरना है, जो बारह मास झरता रहता है। इस झरने के बारे में भी किंवदन्ति है कि जहां इस झरने का पानी नीचे गिरता है वहां पर एक पोखरा सा बना है उसमें किसी समय राजा मनुष्य की सत्यता की परीक्षा लिया करता था। इस सरोवर में मच्छलियां भी हैं।

अर्की में शीतला देवी के मन्दिर के पास भी एक झरना है, मगर यह अब बरसात व उसके बाद कुछ महीने तक ही झरता है। किसी समय यहां पर गोरखा राज्य के समय उनके मुखिया अमरसिंह थापा ने गाय का वद्ध करने वाले चमारों (जूते बनाने वालों) को मृत्यु दण्ड दिया था।

ये स्थान अपने साथ कुछ न कुछ महत्ता व इतिहास लिए हुए है, परन्तु अभी तक आम पर्यटक की दृष्टि से बाहर है और प्रदेश के पर्यटन मानचित्र में भी नहीं उभरे हैं, यदि ऐसा होता तो कोई बात नहीं थी कि इनका विकास न होता।

अर्की पहुंचने के लिए चारों ओर से मार्ग हैं कालका शिमला मार्ग पर स्थित धर्मपुर से एक मार्ग उत्तर की ओर स्पाटू होता हुआ जाता है। सोलन से भी एक मार्ग है। नालागढ़ से भी एक मार्ग आता है। उधर बिलासपुर से बरास्ता धुन्दन व शालाघाट होकर यहां के लिए आया जा सकता है, इन आने वाले रास्तों के आस-पास भी कई दर्शनीय स्थान हैं, जिनका पर्यटन की दृष्टि से काफी महत्व है।

यहां रहने के लिए डाक बंगला है। तथा शिमला के लिए मात्र डेढ़ घण्टे का बस का रास्ता है। सायं तीन बजे के लगभग एक बस शिमला आती है जो पर्यटकों के लिए बहुत उपयुक्त है। अन्य एक दो बसें और आती हैं जो शलाघाट नामक स्थान पर यात्रियों को छोड़ कर पीछे से आने वाली बसों से जोड़ देती हैं।

सरजरी विभाग,
हिमाचल प्रदेश मैडिकल कालेज
शिमला–१७१००१

 सोम

काहिका – जिसमें नौड़ मरता है

—लीलाधर पराशर

बारह-तेरह साल का लड़का था वह। वसन्त में उगी डाली सा मासूम, पालतू खरगोश सा निरीह, स्कूल की वर्दी का खाकी कुर्त्ता और पुराना सा पजामा पहने हुए त्रिजुगी नारायण के रथ के पास बिछी चटाई पर अधलेटा हुआ। समीप ही मां बैठी थी मासूम सी।

यही नौड़ है जो आज मरेगा किसी ने कहा। अरे, इतना सा बच्चा जिसने जीवन की दहलीज पर पांव भी नहीं रखा और मरेगा। कोई बड़ा बूढ़ा नहीं रह गया है मरने के लिए। पता चला कि लड़के का बूढ़ा दादा है और मां है, बस यही परिवार है। बाप मर चुका है और दादा बहुत बूढ़ा हो चुका है। बूढ़ा शरीर, मरने के बाद फिर जी उठे या न उठे क्या पता। अतः अब पोते को यह दीक्षा दे दी है। कहते हैं कि एक बार एक वृद्ध जो किसी मेला में मरा था, बाद में देवता एवं पुजारी की लाख कोशिश करने पर भी पुनः जीवित नहीं हो सका। शरीर का क्या पता कि पुनः जीवित हो या न हो और फिर बूढ़ाया शरीर।

इधर-उधर ऊंची जगहों पर अपनी पारम्परिक वेशभूषा में सजी औरतें, लड़कियां, बच्चे 'नौड़ मरने' का तमाशा देखने के लिए जमा थे। दो तीन दुकानें भी लग गई थीं, चाय-जलेबी, आलू-छोले की और एक ओर बाजे बज रहे थे। लोग मदमस्त हो एक दायरे में नाच रहे थे।

दियार (कुल्लू का एक गांव) का काहिका —श्रावण मास के देव स्थानों के मेले में, जिन्हें काहिका कहते है, नौड़ मरता है। वास्तव में ये मेले न होकर धार्मिक कृत्य ही हैं। इसे देव व मानव का समागम स्थल भी कहा जा सकता है। यह काहिका तीसरे वर्ष मनाया जाता है। पिछले वर्ष बशौणा में कपिल मुनि के यहां मनाया गया था। इस वर्ष यहां और फिर वहां यह लगातार चलता ही रहता है।

नौड़ लगभग साढ़े छः बजे मरेगा। अभी पास के गांव से देवता आने हैं। कोई भी गांव देवता विहीन नहीं है। सूर्य धीरे-धीरे बादलों से सरकता सामने की पहाड़ी की ओर बढ़ रहा था। मां लड़के को कुछ समझा रही थी। ग्रामीण लोग सेबों का उपहार लिए देवता के पास जूते उतार कर झुकते। पुजारी उन्हें मरुए के पत्ते प्रसाद के रूप में देता। अब लड़के का बूढ़ा दादा वहां आ बैठा था, नौड़ परिवार यहां कस्तूरी मृग से दुर्लभ है। इस काहिका के लिए दूर पालगी गांव से आए थे वे लोग। नौड़ जाति का काम ही यही है, तो क्या करें उसे देवता के लिए ही मरना है। इसी लिए उसका जन्म हुआ है। देवता ही उसे जीवन देता है, पालन करता है और सचमुच ही मर जाने पर देवता की सारी सम्पत्ति भी तो उसे ही मिलती है। उसे न सही उसके परिवार को तो मिलती ही है। यह लड़का पहले भी कई बार मर चुका था, फिर भी भय तो रहता ही है। नन्हीं सी जान मां का हृदय ढोल के धमाके के साथ धक से रह जाता।

सात बजने को आए सूरज सामने की पहाड़ी पर पक्के सेब सा टिक गया। क्या पता कब लुढ़क जाए दूसरे देवता नहीं पहुंचे अतः नौड़ मारने की तैयारी आरम्भ हो गई। काहिका परसों से शुरू था। परसों ही त्रिजुगी नारायण का रथ सजाया गया था। कल आराम का दिन था। यानि आज नौड़ के मरने का दिन है। नौड़ को परसों से ही देवता के पास रहना था, उसे केवल दूध पीने को दिया जा रहा था।

उसे नहलाने मन्दिर में ले जाया गया। व्याकुल मां बार-बार चारों ओर घिरे बच्चों, लोगों को पीछे कर रही थी। एक आदमी हाथ में पुराना सा डण्डा लिए उसे नहला कर ले आया। पीली धोती पहनाई गई थी तथा उसे गले और कमर में पट्टियां सी बन्धी थीं। उसे ला कर देवता के सामने खड़ा कर दिया गया। पूजन आरम्भ हुआ, हर पूजन के साथ जोर से ढोल पीटा जाता। वर्षा से भीगा ढोल ठप-ठप बजता।

पूजा के बाद लड़के को ऊपर जाना था, त्रिजुगी नारायण का रथ वहीं पर था। नृत्य-दल ढोल ढमाके सहित पुजारी व लड़के के साथ चल दिया। कुछ ही दूरी पर ऊपर पहले से ही एक आदमी थाली में रोटियां लिए बैठा था। धीरे-धीरे सब लोग नाचते-गाते वहां पहुंच गए। रोटियां उसके ऊपर घुमा कर फैंक दी गई। उसे बीच में खड़ा कर तीन बार चरणामृत पिलाया गया। चारों ओर लोग खड़े थे। पुजारी जोर से चिल्ला रहा था बोल – 'त्रिजुगी नारायण की जय', 'पवन सुत हनुमान की जय', सिया वर रामचन्द्र की जय'। तीन बार चराणामृत पीने के बाद लड़का निश्चेट ही पीछे की ओर लुटक गया आंखें बन्द हो गई। पुजारी व अन्य आदमियों ने उसे कन्धे पर उठा लिया और वापिस चल दिए। अब नौड़ मर चुका था। आगे-आगे बाजे वाले और नर्तक थे, पीछे-पीछे उसे कन्धा दिए पुजारी व अन्य। नीचे पहुंच मन्दिर की परिक्रमा की गई एक ने बाजे वालों को बन्द हो जाने का संकेत किया। एकाएक सभी वाद्य खामोश हो गए। एक आदमी में देवता समा गया था। वह जोर-जोर से जल्दी-जल्दी कुछ बोला। पुनः त्रिजुगी नारायण का जय घोष हुआ। पूजन फिर शुरू। एक-एक करके रेंगते हुए पन्द्रह मिन्ट आगे हुए। मां की आंसुओं से भरी आंखें बालक के चेहरे तक जा कर खाली हुई जा रही थीं, तभी एकाएक हलचल हुई। त्रिजुगी नारायण का जयघोष हर्ष ध्वनि बालक जी उठा था।

गांव बाहुआ, पी०ओ० पीपल,
भून्तर, जिला कुल्लू।

सोमसी

डाडा सीवा का ऐतिहासिक महत्व

–स्वर्ण कान्ता शर्मा

डाडा सीवा का पुराना नाम गांधपुर था। आज भी गांधपुर घट्टा नामक स्थान डाडा सीवा के समीप 'गांधपुरे दा घट्टा' नाम से जाना जाता है।

रजवाड़ा युग में डाडा सीवा एक रियासत थी। आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व डाडा-सीवा (तब का गांधपुर) में रियासत के राणा का नाम डाडू राणा था। उन डाडू राणा के नाम पर ही कालान्तर में गांधपुर का नाम डाडू और फिर डाडा पड़ा। १६७६ के बन्दोवस्त में डाडा का नाम डाडा सीवा पड़ा।

डाडा सीवा में प्राचीन ऐतिहासिक महत्त्व के धार्मिक स्थान, महान तांत्रिक, सिद्ध पुरुष तथा महान स्वतन्त्रता सैनानी डाडा सीवा के महत्व को समय-समय पर बढ़ाते रहे।

यहां का प्राचीनतम ऐतिहासिक स्थल डाडा सीवा के समीप पहाड़ी के शिखर पर बाबा भृतहरि का छोटा सा मन्दिर है यह मन्दिर वर्ण वाला सिद्ध नाम से जाना जाता है। इस सिद्ध के पुजारी 'घनीक' जाति के ब्राह्मण हैं सम्मनतया यही ब्राह्मण जाति डाडा सीवा के आदि वासी हैं। इस सिद्ध की स्थापना काल का पुजारियों को भी कुछ मालूम नहीं।

दूसरा धार्मिक मन्दिर माता चामुण्डा का मन्दिर है जिसे डाडू राजा ने बनवाया था तथा इस मन्दिर का पुजारी यहां के डडेहिया जाति के ब्राह्मण हैं। यह मन्दिर आज के डाडा बाजार के समीप एक बाग में बना है इस बाग में कई वर्ष पहले घनी आबादी थी परन्तु आग के कारण यह सभी गांव जल गया और निवासी अन्य स्थानों पर बस गए।

राधाकृष्ण पंचायतन मन्दिर राजा रामसिंह द्वारा सन् १८८२ ई० में बनवाया गया था इसमें सूर्य, गणेश, शिव, राधाकृष्ण तथा दुर्गा मां की मूर्तियां हैं। इस मन्दिर की दीवारों और छत पर अंकित चित्रकला उस समय की उन्नत कांगड़ा चित्रकला का मुँह बोलता प्रमाण है। अब इस की सम्भाल न हो सकने के कारण इसका काफी भाग मिट चुका है तथा धूमिल पड़ गया है।

सीबा का किला डाडा से लगभग दस किलोमीटर पर है। इस किला पर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में महाराजा रणजीत सिंह ने आक्रमण किया था इस आक्रमण में राजा गोविन्दसिंह तब यहां के राजा थे जो इस युद्ध में हारने के पश्चात् डाडा में आकर बस गए और रणजीत सिंह से अपनी दो पुत्रियों की शादी करके सन्धि कर ली। अधीनता भी स्वीकार कर ली थी। बदले से महाराजा रणजीत सिंह ने राजा गोविन्द सिंह को २२००० की जागीर दी थी।

इस किला में भी भगवान नरसिंह का मन्दिर था, जिस मूर्ति की स्थापना अब तत्कालीन राजा ने शिमला में मन्दिर बनवाकर कर दी है।

नरयाणा में नरहरिश्वर का एक मन्दिर था जो कि अब पौंग बांध के पानी में डूब चुका है। इस मन्दिर का एक शिलालेख जो कि सम्भवतः शारदा लिपि में है आज भी पण्डित तुलाराम सरला के बाग जसूर में शोध कार्य के लिए उपलब्ध है।

यहीं पर 'पीर' शक देवता 'काजू पीर' के नाम से पूजा जाता है। इसे पशुओं की सुरक्षा का प्रतीक माना जाता है। गाय, भैंसों का दूध, दही, घी यहां चढ़ाया जाता है।

यहीं के एक गांव बलधार, बल-आगार (बल का कोष) में नरसिंह की एक मूर्ति उपलब्ध है।

वलवाल के स्थान पर त्र्यंबुक मन्दिर है जिसमें शिव पार्वती की मूर्तियां उपलब्ध हैं

महाध्यानी नामक स्थान पर जो कि रियासत डाडा का ही एक भाग था उसमें मुंचकुंड महादेव का मन्दिर है। यहां हर वर्ष यमदुतिया को मेला लगता है। कुछ ऐसी प्राचीन धारना है कि जो लोग यहां यमदुतिया को रात्रि वास करते हैं तथा सुबह शिवजी के दर्शन करते हैं उन्हें यमों का भय नहीं रहता।

सियूल नामक गांव में राजाओं का ही बनवाया शीतला माता का मन्दिर है इलाके में यदि शीतला का प्रकोप हो तो देवी का कष्ट होना माना जाता था। अब भी इस मन्दिर में जून मास में दो दिन मेला लगता है।

कयोड़ी सिद्ध नामक सिद्ध की स्थापना का स्थान सांप के काटे जाने पर सांपों का जहर उतार कर रोगी को ठीक कर देने के विशेषज्ञ के रूप में माना जाता है।

उपरोक्त धार्मिक स्थान डाडा रियासत के अधीन आते थे जिनका धार्मिक महत्व अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

डाडा सीवा जहां अपने इतने धार्मिक स्थानों के लिए प्रसिद्ध है वहां यहां की धरती ते महान तान्त्रिक, सिद्ध पुरुष और स्वतन्त्रता सेनानी भी पैदा किये हैं।

डाडा रियासत के मसतयाल नामक गांव में राजू चेला नामक एक प्रसिद्ध तान्त्रिक हुआ है जिसके विषय में आज भी अनेक लोक कथाएं प्रचलित हैं यह राजू चेला राजा राम सिंह के समय में उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ है। अपनी तांत्रिक विद्या की शक्ति से ही वह अपना हर काम भूतों-प्रेतों से ही करवा लिया करता था ऐसी धारना उसके प्रति लोगों में है। किसी के ऊपर अगर किसी प्रेतात्मा का साया एक पत्र देकर हटा देता था। भूतों पर अपनी सिद्धि के आधार पर वह कठिन से कठिन कार्य करने में भी समर्थ था।

यहीं का एक सिद्ध पुरुष जैसीराम हुआ है जिन्हें अपनी सिद्धता के लिए आज कल भी श्रीनगर में बारामूला के स्थान पर पीर बाबा के रूप में जाना व पूजा जाता है।

स्वतन्त्रता के पौधे को अपनी कुर्बानी और रक्त से सींचने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों को पैदा करने में भी डाडा सीबा की मिट्टी किसी से पीछे नहीं है। बाबा कांशी राम 'पहाड़ी गान्धी' जैसे स्वतन्त्रता सेनानी तथा उषा शारदा जैसी वीर पुत्री भी इसी मिट्टी की उपज हैं। उषा शारदा जिस ने स्वतन्त्रता संग्राम में अपने समय में लड़कियों पर अनेक प्रतिबन्धों के होते हुए भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया था और अब वह अपने पति श्री शिवकुमार शारदा के साथ गुरदासपुर के समीप पनियार में आज भी समाज सेवा में लगी हुई हैं।

डाडा सीबा जहां की प्राचीन सांस्कृति के भण्डार भरे पड़े हैं। अपनी चित्र कला, धार्मिक स्थानों की मुरम्मत तथा लोक-संस्कृति को लिखित रूप में जिन्दा रखने के लिए आशा भरी दृष्टि लगाए सरकार तथा पात्र की प्रतीक्षा में है।

राजकीय उच्च पाठशाला, डाडा सीबा,
तहसील देहरा, जिला कांगड़ा।

कांगड़ी लोक गीतों में जन्म संस्कार

नन्दकिशोर 'परिमल' गुलेरी

कांगड़ा के लोक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने विशिष्ट रीति रिवाज हैं। जन्म से मृत्यु तक मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुखों एवं दुखों की झलक आपको कांगड़ी लोक संस्कारों व लोक-गीतों में देखने को मिलेगी। कांगड़ी लोक-साहित्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धनी है। इसका अध्ययन करने से हमें प्रतीत हो सकता है कि यहां की सभ्यता एवं संस्कृति कितनी प्राचीन है।

बच्चा जन्मते ही घर खुशियों से भर जाता है। 'गोरी' अपने पति से नये वस्त्रों की मांग करती है। पति द्वारा नये वस्त्र मांगने का कारण वह यों कहती है :

ढ़ोला वे हरयौलेवा ढ़ोला, गोरिया जो कपड़े वा चा वे।
आणेगा अणांवेगा गोरिया, पहनेंगी किस भज्जे[1] वे ?
छट्ठीया पहनां, पंजापे पहनां, होर पहनां तुहाड़े चाएं वे।

पुत्र जन्मने का सन्देश जब गोरी की मां को पहुंचाया जाता है तो जहां उसके आनन्द का वार-पार नहीं रहता वहां दूसरी ओर देखिए वह कितनी चिन्तित है कि बेटा कैसे मुहूर्त में उत्पन्न हुआ होगा।

उड्ड़ कालड़ेया कागा भाईया, उड़ी करेयां स्नेहा।
जाई आखेयां गोरी दीया अम्बड़िया, धीया होलरु[2] जाइया ऐ।
अम्मा पढ़ेया पुच्छै, पढ़ेयां ज्योतिषियां, बाला कित राशि जाइया।
त्रियौई-चौहदी-छट्ठ बरजी करी, पुन्नियां बाला जाइया ऐ॥

गोरी की मां की खुशियों का ठिकाना नहीं रहता और वह बेटी को अशीषें देती है :

अम्मां दिदड़ी ऐ सीसड़ियां, धीया आपणियो ऐ।
हरिया अ्बड़िया देई धीये, हरयावली होइयां ए॥

केवल अशीषों से ही काम नहीं चलता बल्कि बेटी को लड़का जन्मने की खुशी में सुंड बना कर भेजी जाती है। सुंड के प्रति बेटी को मां सन्देश भेजती है :

अम्मां मेरड़िया सुंड भेजी, सुंडी बैहतर[3] लदाए।
किच्छ खाएयां धीए, किच्छ बंडियां धीए—
किच्छ सेहियां जो बरताएयां, बैठी होलरे खलाएयां॥

---

1. बहाना 2. बच्चा 3. घोड़े

बच्चे के जन्म पर मां-बाप, सास-ससुर तथा नाना-नानी ग्रादि के साथ-साथ ग्रड़ोस-पड़ोस व गांव वालों की खुशी का भी ठिकाना नहीं रहता। पड़ोसिनों व गांव की स्त्रियों की खुशी की एक झलक देखिए :

हस्सणु-खेलणु घर ग्राएया, रण झूंजणां माये।
दादे घर जरमेयां पोतरा, रण झूंजणां माये।
बाबे घर जरमेयां धियोहतरा वे गोसंदिए माये।
गोत्रे मंझे कुलदीया वे, गोसंदिए माये॥

बच्चा जन्मने के ग्यारह दिनों के बाद बहु को सुच्चा करने का संस्कार किया जाता है जिसे यहां 'गूंत्र' के नाम से जाना जाता है। 'गूंत्र' नाम इस लिए पड़ा है कि इस दिन बहु को स्नान कराने के बाद शुद्ध करने हेतु बहु व बच्चे को गाय का गूंत्र चटाया जाता है। इसके साथ परिवार के ग्रन्य सदस्यों का सूतक (ग्रशुद्धता) दूर हो जाता है। 'गूंत्र संस्कार' के ग्रवसर पर बच्चे का नामकरण भी कर दिया जाता है। परिवार के पुरोहित, नाई व दाई के ग्रतिरिक्त सम्बन्धी एवं बिरादरी के लोग भी सम्मिलित होते हैं। लोगों में 'बताशे' व मिठाइयां बांटी जाती हैं। 'गूंत्र संस्कार' को यहां कई स्थानों पर 'पंजाप' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस ग्रवसर पर मां व बच्चे को गूंत्र चटाया जाता है, घर में पांच मुंहों वाली 'छूह' रखी जाती है, बिहाई घड़ी जाती है, राशि गिनी जाती है ग्रौर लोगों में मिठाइयां व पैसे बांटे जाते हैं। इस लिए इस दिन को 'पांच-जाप' या पंजाप कहा जाता है।

गूंत्र के ग्रवसर पर मिट्टी की 'बिहाईं' घड़ी जाती है। कई लोग इसके स्थान पर 'नारियल' भी रख लेते हैं। 'बिहाईं' में मूंगा, मोती, चांदी, सोना व तांबा ग्रादि वस्तुएं डाली जाती हैं। कई स्थानों पर यह जन्मदिन के ग्रवसर पर भी घड़ ली जाती है। यह बिहाईं शुभ लक्षण की प्रतीक मानी जाती है ग्रौर प्रायः लड़का जन्मने के ग्रवसर पर ही घड़ी जाती है। बिहाईं घड़ती हुई स्त्रियां गाती हैं :

तूं है बिहाईं राणीएं, तूं हैं बिहाईं।
रुठड़ी-त्रुठड़ी तूं इस घर ग्राईं।
बडूड़े परगड़ें[4] लेई हैं मनाईं॥
इसा बिहाइयां राणियां देयो चिक[5], बालक जरमेया हुण लाएयो टिक[6]।
इसा बिहाइयां राणियां देयो पत्तरी, बालक जरमेया घर होई सौतरी।
इसा बिहाइयां राणियां देयो ध्रुब, बालक जरमेयां घर होइया शुभ॥

---

4. बड़े सवेरे, 5. मिट्टी लीपना 6. समय नोट करना

'गूंत्र' के शुभ अवसर पर बच्चे को अनाज व अन्य बहुमूल्य पदार्थों के साथ तोला जाता है जिसे 'तुला' कहते हैं। यह तुला पहले वर्ष में प्रत्येक मास को किया जाता है जिसे 'दाई' लेती है। इसके पश्चात् हर वर्ष होने वाला जन्म दिवस का 'तुला दान' कुल का 'बुजरु' (ब्राह्मण विशेष) लेता है। इस दिन कुलजा माता के नाम से सुंड, बबरु, चावल आदि के पत्तलु डाले जाते हैं और सम्बन्धियों व प्रियजनों को भोजन कराया जाता है।

इस प्रकार कांगड़ा क्षेत्र के जन्म सम्बन्धी लोक-संस्कार व लोक-गीतों का यहां के लोक-जीवन में अपना विशेष महत्व है। आज के विज्ञान के युग में भी ये लोक-संस्कार एवं लोक-गीत कांगड़ा के जन-जीवन में जीवित हैं।

रा०क०उ०वि०, हरिपुर
जिला कांगड़ा

★●★

महासूई लोकोक्तियों का प्रचलन

–मीना शर्मा

लोक साहित्य में लोक कथाओं और लोक गीतों का जितना महत्व है उतना ही महत्व लोक साहित्य में समाज में प्रचलित लोकोक्तियों तथा कहावतों का है। लोकोक्तियों में किसी भी क्षेत्र या प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा का प्राचीन और असली रूप मिलता है क्योंकि प्रत्येक भाषा सामाजिक प्रभाव के कारण समय के साथ-साथ अपना प्राचीन रूप छोड़ती जा रही है। इतना सब होते हुए भी लोकोक्तियों व कहावतों में हमें भाषा का वही प्राचीन रूप देखने को मिलता है। यही इसकी विशेषता है। लोकोक्तियों को विद्वानों द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं को सम्मुख रखते हुए कहा जा सकता है कि जो वाक्य या उक्ति किसी बात को बुद्धिमता व चतुरता से उसका गूढ़ व अनुभव से परिपूर्ण अर्थ समझाने में सक्षम हो उस वाक्य या उक्ति को हम कहावत या लोकोक्ति का नाम दे सकते हैं। लेकिन प्रत्येक उक्ति को लोकोक्ति नहीं कहा जा सकता। इसके लिए इसे बड़ा लम्बा सफर तय करना पड़ता है। जब कोई उक्ति अनुभव और ज्ञान की कसौटी में घिस-घिस कर सौंदर्य प्राप्त कर लेती है उसी समय हम उसे लोकोक्ति का नाम दे सकते हैं। महासूई भाषा (शिमला के आस-पास के क्षेत्रों) की कुछ लोकोक्तियां जिन्हें आम बोल-चाल की भाषा में लोकोक्ति न कह कर कहावत कहा जाता है, इस प्रकार से है :

लींडा बल्द ठारह ब्याधि : (बिना पूँछ का बैल उस पर अठारह बीमारियां)

यह उक्ति उस समय प्रयोग की जाती है जब कोई मनुष्य पहले से ही मुसीबतों और उलझनों के बीच फंसा हो और ऊपर से कोई नई मुसीबत आ पड़े। उस समय सहानुभूति दर्शाते हुए यह कहा जाता है।

आपी मियां फजीत, दूजे के नसीत : (अपने आप गलत काम करना और दूसरे को नसीहत)

जब कोई मनुष्य जान बूझ कर कोई ऐसा काम करता है जिसके लिए वह दूसरों को उपदेश देता था। फिर लोग उसके काम को देखते हुए इसका प्रयोग करते हैं कि खुद तो मियां फजीयत है और दूसरों को नसीहतें देता है।

कबे ठाकरिये कबे बाकरिये : (कभी जितना हो सभी खत्म करना, और कभी थोड़ा भी न होना)

इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब आदमी अपने पारिवारिक खर्च को सुचारु रूप से न चला कर कभी खूब मौज करे और कभी फाका ही करना पड़े। तब महासूई भाषा में कहा जाता है कि कबे ठाकरिये अर्थात् कभी तो थोड़ी सी चीज़ का भी नाप करना और कबे बाकरिये अर्थात् इतना फजूल खर्च करना कि बकरे को काट कर उसका मीट स्वयं भी खाना और दूसरों को भी खिलाना।

शाड़े मूई शाशू शावणे श्राए श्राशू : (किसी कार्य के करने के बहुत देर बाद पछतावा होना।

इस उक्ति का प्रयोग उस समय होता है जब कोई गलत काम करता जाए और बाद में जब कुछ भी न हो सके उस समय पछतावा करे अर्थात् आषाढ़ के महीने तो सास मर गई, उस समय तो एक भी आंसू नहीं बहाया और जब दो महीने बीत गए और सावन का महीना आ गया तो फिर आंखों से आंसूओं की धाराएं बहती जा रही हों।

पतली छा डाब न खा : (गरीबी में और गरीबी नहीं समा सकती)

जिस प्रकार यदि पतली लस्सी में पानी मिला दिया जाए तो वह उसमें समा नहीं सकता, उसी प्रकार एक अत्यन्त गरीब मनुष्य पर यदि और कोई मुसीबत आ जाए तो वह उसे सहन करने में असमर्थ होता है। उस समय व्यक्ति की ओर इशारा करके यह वाक्य प्रयोग में लाया जाता है।

डूमणी मूएं लाई टाबरो लई रो लाई : (थोड़ा सा मुंह लगाने से पीछा ही पकड़ लेना)

जब किसी की मदद करने पर वह यह चाहे कि अब यह मेरा सारा ही काम कर दे और टलने का नाम न ले, उस समय इसका प्रयोग होता है एक डूमणी (जाति) को मुंह लगाया तो वह सारा टाबर (परिवार) को लेकर आ गई।

नाको दा शिणका, ओठों पांदे राखा : (किसी बिगड़े हुए काम को और बिगाड़ना)

यदि किसी बिगड़े हुए कार्य को सुधारने की अपेक्षा अधिक बिगाड़ दिया जाए उस समय इसका प्रयोग किया जाता है जैसे नाक की सींढ को निकाल कर ओंठों पर रखने से वह और बुरा लगता है। उसी प्रकार यदि कोई स्त्री अन्दर से झाड़ू लगाकर कूड़ा दरवाजे पर या पौड़ियों पर फेंक दे तो आम घरों में इसका प्रयोग किया जाता है।

दूधो री बुध जाति री पत : (जैसे मां बाप, वैसी सन्तान)

जब कोई सन्तान भी अपने मां-बाप की तरह ठीक काम न करे तो उस समय इसका प्रयोग किया जाता है कि दूधो री बुध और जाति री पत अर्थात् मां के दूध और बाप की जाति का जरुर असर होता है।

घीओ रे तोलने घीअड़, थूको री देणी रेखा : (बेकार के कार्य पर खर्च व ठीक कार्य पर कंजूसी)

अर्थात् घी के तो बर्तन के बर्तन तोलने और उसमें कितना ही बेकार में इधर-उधर बरबाद कर देना लेकिन जब कभी शुभ कार्य जैसे सत्यनारायण की कथा, पाठ, पूजन, हवन आदि करने के लिए घी की लकीरें देने के लिए भी मना करना और कहना कि थूक से दे दो। अर्थात् बेकार के कार्यों पर फजूल खर्च करना और ठीक कार्य पर कंजूसी करना।

अपणा घौर हग्गी रो भर, दूजे रे घौरे थूकणे रा भी डर : (अपने घर में अपनी इच्छा और दूसरे के घर में दूसरे की इच्छा)

इस उक्ति का प्रयोग मनुष्य के अपने घर से प्यार और आस्था को दर्शाता है। मान लीजिए कोई व्यक्ति अपने किसी साथी को कहता है कि चलो उक्त या किसी भी व्यक्ति के घर जा कर यह काम करेंगे उस समय वह कुछ गलत न हो जाने की सम्भावना के डर से ऐसा कहता है।

बड़ी मुश्कलें खसम बणाया से भी कौवे और लूदे खाया : (बड़ी मुश्किल से किया कार्य कुछ दुष्ट लोग बिगाड़ दें)

जब बड़ी कठिनता से कोई कार्य पूरा हो लेकिन उस पर कुछ दुष्ट प्रवृति के लोग उसे बिगाड़ दें अर्थात् बड़ी मुश्किल से किसी ने अपना विवाह रचाया और पति बनाया और उस पर भी उसको एक दिन चील और गिद्द खा गए।

जूओं पिछके खिनटे नीं फुकुदे : (छोटे कार्य के पीछे बड़े कार्य को बिगाड़ना)

जब किसी मामूली कार्य को करने से किसी बड़े कार्य के बिगड़ने की सम्भावना हो उस समय यह कहा जाता है कि इस काम को करके हमने अपना दूसरा काम नहीं बिगाड़ना अर्थात् जूओं के पड़ने पर उनको मारने की अपेक्षा खिनटे को नहीं जलाया जा सकता, जिस पर रोज सोना है।

आपणे मरे हुन्दे भी छेंई दे पा : (अपने खून का रिश्ता ही दर्द महसूस करता है)

यह उक्ति इस बात का एहसास करवाती है कि जो अपना खून का रिश्ता होता है, उसके साथ चाहे दुश्मनी ही क्यों न हो तब भी जब कोई तीसरा आदमी हमारा बुरा चाहेगा तो उसको दया आ ही जाती है जैसे आपणे मरे हुन्दे भी छेंई दे पा अर्थात् अपने लोग मरे हुए आदमी को भी छांव में डाल देंगे। उन से वह शरीर धूप में सूखता हुआ नहीं देखा जाता।

सौकणी रे बांडे दे लड्डू : (दूर के ढोल सुहावने)

जैसे दूर से बजते हुए ढोल की आवाज बड़ी मधुर लगती है लेकिन यदि उसे बिल्कुल कान के पास लाकर पीटना शुरु कर दिया जाए तो उसकी आवाज अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार हमेशा दूसरे के पास चीज अच्छी लगती है। जब ऐसी कोई बात हो जाए तब कहते हैं कि सौकणी रे बांडे दे लड्डू ही दिखाई देते है।

गोली रे माणे बान्दरे भी खूटी चोड़ी : (किसी की नकल करने पर अपना नुकसान करना)

जिस प्रकार गोली (लंगूर) बड़ी लम्बी छलांग मारता है और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर चला जाता है यह देखकर बन्दर को भी ईर्ष्या हुई और उसने भी उतनी ही लम्बी छलांग लगा दी और पेड़ पर पहुंचने की बजाय जमीन पर गिर पड़ा और अपनी टांग (खूटी) तुड़वा बैठा। उसी प्रकार यदि कोई किसी की नकल करके काम करने पर नुकसान उठाता है तो इस उक्ति का प्रयोग किया जाता है।

लाखा का जो बिजली : (दो मनुष्यों की तुलना)

यह लोकोक्ति उस समय प्रयोग की जाती है जब कोई काम एक व्यक्ति से दूसरे के पास इस आशा से दे दिया जाए कि वह ठीक कर देगा लेकिन निराशा ही हाथ लगे। उस समय कहा जाता है कि लाखा का जो बिजली निकली।

बेशर्मा डाल जामे, मेरे आए छेंई के कामे : (ढीठ आदमी के लिए प्रयुक्त होता है)

यदि कोई मनुष्य अपनी गलती को समझने पर भी सुधारने की कोशिश न करे उस समय कहा जाता है कि बेशर्मा डाल जामे, मेरे आए छेंई के कामे अर्थात् बेशर्मी के नाक पर पेड़ उग गए तो वह खुश हो कर कह दे कि अच्छा हुआ मेरे तो छांव के लिए काम आयेगा।

फील सिकी रो और ठाडा पटिकी रो पहुंचने एकी देंय : (धैर्य से किये कार्य और खलबली में किये कार्य की तुलना)

जब कोई मनुष्य किसी काम को करते समय अपने आपको बहुत व्यस्त प्रदर्शित करने की कोशिश और कार्य दूसरे आदमी जितने समय में ही पूरा करे उसी समय इस उक्ति का प्रयोग होता है। इसमें फील और टिड्डे की चाल की तुलना की गई है।

ठगड़े रे बोल और आवल् रा स्वाद फिरे चीते आ : बुजुर्ग की नसीहत का बाद में पता चलता है)

इस में बुजुर्ग की तुलना आंवले से की गई है कि जिस तरह आंवले को खाने से पहले उसका स्वाद कड़वा और बाद में मीठा लगता है उसी प्रकार बुजुर्ग की बात भी बाद में अच्छी लगती है।

भोले रे सोला और चन्दरे रे पन्दरा : (ठीक ढंग से किया काम सफल हो जाता है)

इस उक्ति का प्रयोग उस समय होता है जब कोई मनुष्य बहुत हेरा फेरी करके भी काम न बना सके और उसकी जगह किसी ईमानदार का काम बन जाए उस समय कहते हैं देखा कि भोले रे सोला और चन्दरे रे पन्दरा।

शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
लींडा बल्द	आधी पूंछ वाला बैल	डाव	समाई न होना	छेंई	छांव
फजीत	बेशर्म	टाबर	परिवार	गोली	लंगूर
ठाकरी	तोलने का ग्रामीण पैमाना	घीग्रड़	घी रखने के लिए मिट्टी के विशेष बर्तन	माणे	नकल
				खूटी	टांग
शाशू	सास	लूद	गिद्द	ठगड़े	बुजुर्ग
आशू	आंसू	खिनदटे	पुराने कपड़ों से बनाई हुई सोने के लिए तलाइयां		

गांव व डाकघर नगर,
जिला कुल्लू (हि०प्र०)।

किन्नर कैलाश शिवलिंग शिखर आरोहण

–कृष्ण चन्द काएथ
आरोहण दल नेता

विश्व के सब से विवेकशील प्राणी मनुष्य की जिज्ञासा का क्या कहना ? जहां-जहां प्रकृति ने इसे चुनौती दी इसने उसकी ललकार को हंसते-हंसते स्वीकार किया। मानव चेतन है वह अचेतनशील प्रकृति पर सदा विजय पाने की कामना युगों से अपने दिल में रखता आया है। अपने पौरुष का पुरुष ने युग युगान्तर से प्रदर्शन किया है। यह सत्य है कि प्रकृति एक माया है वह अपनी मोहनी लीलाओं से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। तदनन्तर ही मानव उस पर विजय पा लेने की इच्छा रखता है। इस प्रकार से वह किसी न किसी रूप से अपने पुरुषार्थ के द्वारा विजय पा लेता है। उसकी उपलब्धियां जब उसे साक्षात रूप देती हैं तो उसके विचार श्रेष्ठ और निर्मोही बनने लगते हैं और वह जीवन में कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता रखने लगता है।

इस प्रकार से प्रथम जुलाई, १९७७ की प्रातः जब सूर्य भगवान की पहली किरण दूर क्षितिज पर किन्नर कैलाश शिवलिंग का आलिंगन करती हुई अचानक मेरे मुंह पर पड़ी, तो मैं एक दम आंखें मूंद एक अनन्त आनन्द में खो गया था। मुझे लगा कि शिव भगवान ने इन किरणों को मुझ तक यह सन्देश लेकर भेजा है कि हे कवि महोदय कभी तो तुम अपनी कविता द्वारा मधुर कीर्तन के लिए मेरे इस आवास किन्नर कैलाश शिवलिंग तक तो आ जाओ। उसी दिन से मेरे मन में उस मंजिल तक जाने की इच्छा वेग पकड़ने लगी। मेरी मन ही मन कैलाश शृंखलाओं की दुर्गम घाटियों को पार करने की दृढ़ इच्छा जागृत हुई। मैंने अपने कार्यालय के परम मित्रों से शिवलिंग शिखर तक पहुंचने की इच्छा व्यक्त की और उनसे सहयोग भी मांगा। यन्त्रवेग की तरह वे मान गये। मानने वालों में सर्वश्री मस्तराम चौहान, रत्नचन्द और ज्ञानचन्द थे। उसके बाद पांच दिन तक बात दबी रही।

८ जुलाई, १९७७ को पुनः प्रातः शिवलिंग के स्पष्ट दर्शन हुए। याद जागी। साथियों से पुनः आग्रह किया। सब अभियान पर चलने को तैयार हुए। उसी दिन दल के नेता की हैसियत से मैं जिलाधीश श्री रवि डिंगरा से परामर्श लेने गया। उन्होंने सहर्ष विषय को महत्व दिया। साथ ही मेरे दल की सफलता और सुरक्षा की शुभ कामना की। मैंने अपने साथियों को आवश्यक सामग्री अपने साथ ले चलने का परामर्श दिया। हमने यह भी निर्णय लिया कि हमारा बोझ यात्रा के लिए कम से कम वजनी हो। सब से हल्के और हवा बन्द वस्त्र पहनने का भी निर्णय किया। यह भी निर्णय किया कि हम तीन समय का भोजन अपने पास बना कर ले जाएंगे। ठीक दूसरे ही दिन हम ने यात्रा आरम्भ करने की बात पक्की की।

९ जुलाई, १९७७ की प्रातः आ गई। उस दिन द्वितीय शनिवार था और सरकारी कार्यालयों में भी अवकाश था। हमारे पर्वतारोहण की यह प्रथम ऐतिहासिक प्रातः थी। हम पूर्व नियोजित कार्य-क्रम के अनुसार निश्चित स्थान पर इकट्ठे होने थे। परन्तु हमारे तीन साथी निश्चित समय पर नियोजित स्थान पर न आ सके। मैंने अपने साथी श्री सीसराम चौहान से आग्रह किया कि हमें चाहे कुछ भी हो यात्रा पर जाना ही होगा। मेरी बात का पुष्टिकरण श्री रत्नचन्द जी ने भी कठोर शब्दों में किया। हमने समय अधिक होने के कारण पवारी बस तक से जाने का निश्चय किया। बस आई और हम तीनों बस में सवार हुए। बस लोक निर्माण विभाग कलौनी से ठीक ६-२५ पर रवाना हुई। बीच में थोड़े समय के लिए हमारी बस पीओ बस-स्टाप पर रुकी। मैं अपने मित्र हिमालय फोटो स्टुडियो के मालिक सरदार त्रिलोचनसिंह के पास यह जानने के लिए गया कि हमारे अन्य तीन साथियों की जानकारी उन्हें भी है या नहीं। वे उसके पास नहीं गए थे और न ही उससे कोई जानकारी मुझे मिली। मैंने उनकी दुकान से तीन रीलें मार्ग में चित्र लेने के लिए खरीद कीं। मैं वापिस बस में आया और बस पवारी के लिए रवाना हुई। हमारी बस ज्यों ही पवारी बस-स्टाप पर रुकी तो त्यों ही हम तीनों की नजर बस की खिड़कियों से बाहर होटल के सामने बैठे तीनों साथियों पर जा पड़ी। हमारे हर्ष का ठिकाना न रहा, दिल को लगा जैसे देवाधिदेव महादेव ने हमारी परीक्षा कलपा से ही लेनी प्रारम्भ कर दी हो। हमने हर परीक्षा में खरा उतरने का निश्चय किया। हम तीनों साथी बस से उतरे ही थे कि बैठे अन्य साथी दौड़ कर आये और हमसे बारी-बारी गले मिले। उस रहस्यमय मिलन ने हमें विशेष आनन्द दिया। उसी क्षण श्री ज्ञानसिंह राठौर, जो वर्तमान समय में जिलाधीश किन्नौर के सामान्य सहायक हैं हमारे पास आये और उन्होंने हम सब की इस यात्रा की सराहना की और शुभ कामना करते हुए आशीर्वाद दिया। हम ठीक ७-३० बजे चाय पी कर पवारी से अपनी मंजिल की ओर अग्रसर हुए।

पवारी से १ किलोमीटर आगे हमें झूले से शतद्रु (सतलुज दरया का वैदिक नाम) को पार करना था। हमारे दो साथी श्री मस्तराम और श्री सीसराम ने इससे पहले झूले से किसी भी दरया को पार नहीं किया था। वे झूले में बैठने के प्रसंग से बहुत खुश हुए थे। परन्तु जब वे झूले से दरया पार कर रहे थे तो उनके चेहरे पर खुशी छाई हुई थी। जैसे ही पार उतरे तो खुशी से जय शंकर पुकार उठे। दरया पार करते समय एक बालक बहुत ही कौतूहल वश हमें निहार रहा था, मैंने उसका चित्र खैंचा वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। शतद्रु के पार पहुंचने पर हमने शिव स्तुति में यात्रा गान शुरू कर दिया। ठीक ८ बजे प्रातः हमारे पग कैलाश पर्वत की चढ़ाई पर ऊपर की ओर बढ़ने लगे। अभी हमने चढ़ाई लगभग १०० मीटर ही चढ़ी थी कि दो लावण्यवती किन्नर बालायें टोपियों में फूल लगाये तंगलिंग गांव से आती हुई मिलीं। वे दोनों युवतियां हम को पीठ पर झोले उठाये देख कर कौतूहल वश अपनी भाषा में पूछ बैठीं।

हम बियो आते ?
(अर्थात् कहां जा रहे हो भाई।)
निगां कैलाश कोचंग बीजो तच।
(हम किन्नर कैलाश की ओर जा रहे हैं। मैंने भी लोकल भाषा में उत्तर दिया।)
किनां थाबिच द्वा बिमा शी मिग निच, कालिस रगास कंच।
(वहां मत जाओ उधर मर जाते हैं देवता लोग पत्थर बरसाते हैं।)

सोमसी

रिगजेश्रा थचोमंच निगानु शिव जी कुचंस।

(कोई बात नहीं बहनों घबराश्रो नहीं हम को भगवान शिव जी ने बुला रखा है। मैंने मजाक में उत्तर दिया वे सुन कर खिल खिला कर हंस दीं श्रौर दौड़ कर नीचे की श्रोर चली गईं।)

हम उनकी श्रन्ध विश्वासी वृति पर मन ही मन मुसकुराते हुए गांव की श्रोर चलने लगे। गांव को पार करते हुए गांव वासी हमें श्राश्चर्य से देख तो जरूर रहे थे परन्तु पूछा किसी ने कुछ नहीं। गांव के बाहर जंगल से मैंने साथियों से दो तीन पेड़ों की शाखाएं तोड़कर ले चलने को कहा ताकि शिखर पर पताका फहराने के काम श्राए। उन्होंने तत्काल ही शाखाएं तोड़कर श्रपने हाथों में उठा लीं। ८-३० बजे हम ने तंगलिंग नाले को पार किया नाले पर लकड़ी का श्रारजी पुल बना हुश्रा था। इस कारण हमें नाले को पार करने में विशेष कठिनाई न हुई। नाले के पास एक बड़ी चट्टान पर हम ने थोड़ा सा विश्राम किया साथ ही वहां तंगलिंग गांव की एक बुढ़िया द्वारा दी गई खुमानियां भी खाई। मैंने चढ़ाई चढ़ने से पहले साथी ज्ञान से जैरिकेन में पानी भरने को कहा क्योंकि खड़ी चढ़ाई के कारण प्यास लगने का भय था। चढ़ाई का मार्ग जहां तीखा खड़ा जरूर था परन्तु गांव वालों के श्राने जाने से खुला श्रौर स्पष्ट भी था। यात्रा की गति तीव्र होने के कारण हमारी सांसें फूलने लगी। परन्तु हम ने तत्काल ही इसका साधारण हल ढूंढ लिया। हल यह था कि हम गीत गाते मज़ाक करते चढ़ाई को पार करें ताकि हमारी थकावट बढ़ने न पाये। दोपहर का भोजन हमने चढ़ाई में ही किया। हम कुछ देर वहां सुस्ताए श्रौर खाना खाते एक दो चित्र भी खींचे। तत्पश्चात् हम ने श्रपने गनतव्या की श्रोर यात्रा जारी की। लगातार चढ़ाई पार करने के बाद तंगलिंग वालों की जमीनें नजर श्राने लगीं जिसमें फाफरा (व्रस) नामक फसल बीजी थी एक दो खेतों में कृषक बालाएं गुड़ाई भी कर रही थी। हम श्रजनबियों को श्रपनी श्रोर ऊपर चढ़ते देख उन्होंने किन्नरी गान मधुर स्वरों में गुनगुनाने शुरु कर दिए। गीतों के बोल कुछ इस प्रकार थे :—

कौनेचु बेनंग बुदेनु मताचु बं काबु हाची ग्योश।
नलपंग कुलंग हाची ग्योश डानिचु मैदान हाची ग्योश॥

अर्थात जब प्रेमी की याद प्रेयसी को श्राती है तो उसका मन श्रपने संतुलन में नहीं रहता उसे बड़े-बड़े दरिया छोटे-छोटे नालों की तरह श्रौर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ सीधे मैदानों की तरह दिखने लगते हैं।

हम सब ये सुन कर बहुत ही हर्षित हुए कुछ एक को लोकल भाषा समझ में नहीं श्राती थी उन्होंने बार-बार मुझ से गीत का भावार्थ पुछा। सुन कर सब हंस पड़े हमने उन बालाश्रों से पानी मांगने की कोशिश की परन्तु वे इतनी शरमा गई कि उन्होंने इशारे से पहाड़ी के उस पार बहते हुए झरने की श्रोर संकेत किया। हमारी थकावट लगभग काफी कुछ समाप्त हो चुकी थी जबकि तब तक हम प्यास से मारे जा रहे थे। उन जमीनों से एक किलोमीटर ऊपर पहाड़ी चढ़ने के बाद हमें दूर प्रकृति के मन मोहक नजारे देखने को मिले। सामने विस्तृत फैला हरा भरा मैदान जिस पर छोटी-छोटी तीवती धूप जिसे लामा लोग गनपो (बुद्ध मजहब के मन्दिर) में जलाया करते हैं। उन धूप की झाड़ियों में बहुत ही सुन्दर वन पुष्प इस प्रकार खिले हुए थे कि मानो चम्पा कली की बेला में फूल सुभासित हो रहे हों। उन फूलों पर श्रली गण श्रपनी मृदु तान में गुंजन कर रहे

थे। हमने वहां विश्राम करने की ठानी। श्री मस्तराम और ज्ञानचन्द को दूर झर-झर करते प्राकृतिक झरने से पानी लाने को भेजा। जब तक साथियों ने चाय बनानी थी तब तक के लिए मैं पास ही एक ऊंची शिला पर जा कर बैठ गया और वहां से दूर बकरी चुगाते गडरिये को दूरबीन से देखने लगा। वह गडरिया नाले के किनारे पर बांसुरी बजा रहा था उसकी उंगलियां बांसुरी पर चलते हुए साफ दीख रही थीं परन्तु स्वर सुनाई न दे रहा था क्योंकि वह बहुत गहरी घाटी में था। न चाहते हुए भी मुझे अपने साथियों के पास तब वापिस आना पड़ा जब उन्होंने लगातार चाय पीने के लिए आने का आग्रह किया।

चाय पीने के बाद हम कम्बल बिछा कर धूप में लेट गए और तब तक लेटे रहे जब तक दूर से तीव्रगामी धुंध में हमें चौंका न लिया। हमें डर हुआ कि यदि धुंध छाई तो हमें आगे का मार्ग न दिखेगा। हमने जल्दी-जल्दी में दो चार फोटो खैंचे और घाटी में नीचे की ओर अनदेखी राह पर तीव्रता से उतरने लगे परन्तु उससे आगे हम को राह का पता न था। मैंने जब नीचे देखा तो स्पाट चट्टान खड़ी दिखी मैंने साथियों को दिशा बदलने का संकेत किया। तब हमारे साथी श्री मस्तराम ने सीधे उत्तर की ओर झाड़ियों को फांद कर रास्ता पार करना शुरु किया। जब वह एक सीधी चट्टान पर पहुंचा तो जोर से चिल्ला उठा कि कोई जानवर उस शिला के पास से उछल कर मेरी ओर भाग आया। मैंने उचक कर नीचे खुली जगह में देखा तो लगा कि जरूर कोई जानवर झाड़ी से निकल रहा था क्योंकि झाड़ी हिल रही थी। जब सामने नाले के पार नजर गई तो देखा कि वह तो कस्तूरी मृग था। वह मानो बार-बार पीछे देखकर संकेत से कह रहा हो कि हे मानव तू चाहे किसी भी नियत का हो परन्तु मेरी कस्तूरी का मोह तुझे जरूर मोहित कर देता है। जिसके फलस्वरूप तू मेरी जाति का निर्मूल नाश कर के छोड़ता है इसीलिए मैं भागा जा रहा हूं। मैं वन विभाग के उच्च अधिकारियों से विनय करुंगा कि कथित स्थान वन पशु सुरक्षा हेतु सुरक्षित रखा जाए।

विषय का प्रसंग उचित दिशा में लाते हुए हमारी यात्रा दुर्गम गहरी खाइओं को लांघते हुए एकदम एक तीरछे विस्तृत फैले गलेशियर के छोर पर रूकी। हम हतप्रभ से उस गलेशियर को थोड़ी देर देखते रहे फिर मुझे एक युक्ति सुझी मैंने अपना झोला अपने नीचे रख कर नीचे को फिसल कर गलेशियर को लांघ दिया। देखा देखी सब साथी भी उसी प्रकार नीचे सीधी जगह में आ गए तब तक मैंने उनकी कुछ तसवीरें भी उतार ली थी। हम लोग गलेशियर से जैसे ही लगभग ४० गज ऊपर चढ़े होंगे तभी एक जोर का धमाका करते हुए चट्टान उसी गलेशियर पर आ गिरी जिस पर हम कुछ क्षण पहले उतर रहे थे। हम लोग एकदम यह दृश्य देखकर घबरा गये थे। हमने तीव्र गति से ऊपर की ओर चढ़ना प्रारम्भ किया। रत्नचन्द जिन्हें हम मज़ाक में चाचु भी पुकारा करते हैं और सीसराम हम से पीछे रह गए। हमें शीघ्र अति शीघ्र उस भयानक नाले को पार करना था जिसके किनारे से हम ऊपर को चढ़ रहे थे। बड़ी कठिनाई से हमने एक चिकनी चट्टान को लांघा परन्तु ठीक उसकी दूसरी ओर हमारी नजर एक बहुत ही बड़े लगभग ५०-६० मीटर गलेशियर पर पड़ी। शाम का डूबता सूर्य और मुंह खोले काली रात हमारे धैर्य को चुनौती दे रही थी।

साथियों के चेहरे गलेशियर के विशाल रूप को देख कर इतने उतर गए थे कि वे अपने सामने मौत को स्पष्ट देख रहे थे। मैं सबसे आगे था चार आदमियों के दल और उनका भविष्य मेरे साहस पर निर्भर करता था। मैंने दोनों आंखें मुंद कर भगवान और मौत दोनों को याद किया और गलेशियर पर पैर जमाता हुआ आहिस्ता-आहिस्ता पार जाने लगा। मुझे भय था कि नाले के बीच में गलेशियर की बर्फ उसके नीचे तेज बहते नाले के कारण कट कर पतली न पड़ गई हो। मैं निर्भय हो उस पौइंट से भी आसानी से आगे निकल गया और थोड़ी ही देर में गलेशियर के पार एक चट्टान पर पहुंच गया तब तक एक नेगी जो भेड़ें चरा रहा था दौड़ता हुआ नाले के सिरे पर आया और जोर-जोर से पुकारने लगा गलेशियर को न टपो ये टूट जाएगा और सबके सब पानी में बर्फ के नीचे गिर जाएंगे। परन्तु मैंने साथियों को साहस दिया वे भी आहिस्ता-२ गलेशियर को लांघ आए। तब मेरे मित्र मिस्टर चौहान को सूझी कि उस गलेशियर का चित्र लिया जाए परन्तु रील न होने के कारण जल्दी चित्र न ले सका पुनः रील जब चढ़ाई तो कैमरे का ढकन छिटक कर गलेशियर पर गिर गया और फिसल कर गहरी दरार में जा फंसा यह देखकर हम बड़े दुःखी हुए परन्तु उस नेगी ने, जिस का नाम बाद में पूछने पर मेहरचन्द विदित हुआ, शीघ्र ही बड़ी चपलता से उस ढकन को गलेशियर में से उठा लाया। मैंने उसे पांच रुपये इनाम के रूप में दिए उसने बड़ी देर के बाद वह पैसे पकड़े क्योंकि वह लेना नहीं चाहता था। परन्तु उसका परिश्रम इतना अधिक था कि वह उस राशि को पाने का अधिकारी था।

उसने हम से पूछा कि हम किस उद्देश्य से कहां जा रहे हैं। हमने अपनी यात्रा की संक्षिप्त रुचि उसे जाहिर की तो वह बहुत ही खुश हुआ और हमें अपने साथ अपनी गुफा (थाचरंग डवार) अर्थात् भेड़ बकरी रखने वाली गुफा में ले गया। वहां जगह तंग थी। हम पास में ही एक दूसरी गुफा में रात्रि शरणावास के लिए बैठ गये, उस नेगी ने हमें एक बोझ सूखी लकड़ी तथा एक दोड़ू (उनी डबल कम्बल) और खारचा दिया। साथ में कढ़ी तैयार करने के लिए बकरी के दूध की लस्सी भी दी। हमने प्रथम तो चाय तैयार की फिर चावल बना कर एक ओर रखे और चावल वाले पतीले को खाली करके उसी में कढ़ी तैयार की। खाना खाने से पूर्व हमने कीर्तन शुरू किया परन्तु ऊंचाई होने के कारण कुछ ही देर में गाते-गाते हमारी सांस फूलने लगी, हमने कीर्तन जब समाप्त किया तो नेगी भी वहां पहुंच गया। हमने खाना खाया। उसके बाद कुछ इधर उधर की प्राकृतिक विशेषता तथा शिवलिंग महिमा के बारे नेगी मेहरचन्द से पूछ ताछ की। साथ में उनसे आग्रह किया कि वह अगली सुबह हमारे गाईड बन कर किन्नर कैलाश शिवलिंग शिखर तक चलें। पहले तो वह कुछ भयभीत से नजर आये। शायद शिखर की ऊंचाई और रास्ते की विषमताओं से घबरा गये होंगे। परन्तु जब हमने उन्हें कहा कि हम अजनबी हैं और हमारी उत्कण्ठा हमें हर कठिनाई से टक्कर लेने के लिए प्रेरित किए हुए है तो आप यहां के मूल निवासी होने के नाते क्यों घबराते हो। जब मैंने कहा कि हम उन्हें साथ चलने का पारिश्रमिक भी देंगे तो वह राजी हो गये। हमने प्रातः छः बजे यात्रा करने की ठानी।

अभी हम सोने के लिए बिस्तर में लेटे ही थे कि एक भारी चट्टान कहीं सामने ही हमारी गुफा वाले नाले में आ गिरी। हम लोग धुन्ध के कारण कुछ न देख सके परन्तु नेगी ने हमें बताया कि ऐसी चट्टानें इस क्षेत्र में प्रति दिन हर तीसरे घण्टे गिरती ही रहती हैं परन्तु हमारे लिए वह

बहुत ही भयानक चेतावनी थी। हम इसी सोच में डूब गये। नेगी उठ कर अपनी गुफा में चला गया परन्तु साथी गण बिस्तर में बिना नींद लेटे हुए थे। बाहर हवा की गति तेज थी सब को यही चिन्ता थी कि अगले दिन का मौसम न जाने कैसा रहेगा। यही सोचते-सोचते हमें न जाने कब नींद आ गई। हमारी आंख अगले प्रातः जब खुली तो हमारे सामने बर्फीली पहाड़ियां मुसकरा कर हमारा अभिवादन कर रही थीं।

१० जुलाई को ठीक प्रातः ६-१० पर हम कैलाश शिखर की ओर अग्रसर हुए। हमारी प्रारम्भिक गति कुछ तीव्र सी थी परन्तु ज्यों-ज्यों चढ़ाई अधिक चढ़नी पड़ी त्यों-त्यों साथियों की सांसें फूलने लगीं। जिस पहाड़ी तक अन्तरिक्ष का छोर हमें दिख रहा था वह पहाड़ी देखने में निकट और चलने के लिए हमें पूरे एक घण्टे का समय लगाना पड़ा। वहां से हम एक बड़ी सी पाषाण शिला के नीचे पहुंचे जहां हमारे गाईड श्री मेहरचन्द ने हमें शौच आदि से निवृत होने की सलाह दी। हमने उसके कथनानुसार सब काम किया और शिला के ऊपरले भाग की ओर चढ़ गये। जैसे ही शिला वाला भाग समाप्त हुआ तो वैसे ही सामने कैलाश शिवलिंग शिखर इस प्रकार से खड़ा साफ दिख रहा था मानो मधुर मुसकराहट से हमारा अभिविवादन कर रहा हो। शिव-लिंग शिखर का लालिमा भरा ललाट साक्षात महादेव जिन की महिमा की अभिव्यक्ति वेदों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत में यथा प्रसंग निरूपित है और वे मानो स्वयं ही उस श्री शिवलिंग शिखर के रूप में हमारे सम्मुख साक्षात विराजमान हों। हम शिवलिंग की छवि मुग्ध हो सतत निहारते रहे। नेगी मेहरचन्द ने हमें यात्रा जारी रखने का परामर्श दिया और साथ ही कहा कि अभी उस जगह से चार घण्टे का रास्ता हमने सामने दिखने वाले श्री शिवलिंग तक पार करना है। हम लोग यह सुन कर हैरान से हो गये कि पास दिखने वाला शिवलिंग क्या सचमुच ही इतने दूर था।

ज्यों-ज्यों हम बड़ी-बड़ी चट्टानों को लांघते छलांगें भरते पार कर रहे थे त्यों-त्यों उन शिलाओं के नीचे बहते पानी के कल-कल स्वर साफ सुनाई देने लगते थे। नेगी ने कहा कि इस लगभग १६ किलोमीटर के घेरे वाले डाबर में जहां पहाड़ों के गिरने से बड़ी-बड़ी चट्टानों का अम्बार था, के नीचे भील का पानी वह कल-कल की ध्वनि कर रहा था। यह तथ्य ही है कि कभी उस स्थान पर कोई बहुत बड़ी भील जरूर रही होगी। ऐसे तो हमें एक भील पीछे १०० गज की दूरी पर पार करनी पड़ी परन्तु उससे अच्छी और लम्बोतरी डाबर के पश्चिमी भाग पर देखने को मिली। जिस की महिमा इस प्रकार से है कि भील के मध्य हमें एक पत्थर के गोलाकार खण्ड के चहुं ओर एक नितान्त काला लगभग ८ फुट लम्बा नाग दिखा। जो या तो ठण्ड से चुप लिपटा पड़ा था या वह यूं ही हमें देख कर चुप था। उस शिला के दोनों ओर बर्फ के छोटे-छोटे मोमबतीनुमा खम्बों से पानी में दो अढ़ाई फुट की दूरी पर तरतीब से एक सीधी लाईन में खड़े थे, शिला के उत्तरी भाग वाले टुकड़े ८ थे और दक्षिण भाग वाले टुकड़े जो काफी कुछ पानी के भीतर थे ६ की संख्या से ऊपर ही थे। हमने उन सुन्दर टुकड़ों के चित्र खैंचे और साथ ही पत्थर से लिपटे नाग का भी चित्र लिया। परन्तु वह हमारी रील में साफ नहीं आया। इस तरह के कितने ही अन्य मनाकर्षक प्राकृतिक दृष्य शिवलिंग शिखर के आंचल वाले भाग तक देखने को मिले। जिन में एक यह भील जो बड़े-बड़े गलेशियरों के छोर पर नील गगन की तरह

विस्तृत फैली पड़ी है जो हिम-क्रीड़ा के प्रेमियों के लिए अति उपयोगी सिद्ध हो सकती है। परन्तु इस विशाल दुर्गम और ऊंची-ऊंची हिम गिरी शृंखलाओं से घेरे कष्टमय भू भाग में कौन क्रीड़ा प्रेमी हिम-क्रीड़ा के लिए आने का साहस करेगा। वरन् यह संसार का सब से ऊंचा १६००० फुट की ऊंचाई पर हिम क्रीड़ा-स्थल माना जाता।

हम झील से होते हुए उन ऊंची-ऊंची विशाल चट्टानों के बीचों बीच शिवलिंग तक जाने का मार्ग खोजने लगे। हमारे गाइड श्री मेहरचन्द नेगी भी कुछ असमन्जस में फंस गए। तब वह ही एक चट्टान को बड़ी कठिनाई से चढ़ कर ऊपर गया और हमारे जाने के लिए रस्सी फेंक कर हमें ऊपर को खैंचा। इस प्रकार से हमें उन बड़ी चट्टानों को लांघते हुए ऊपर की ओर जाना पड़ा। जब हम करीब १७ हजार फीट की ऊंचाई पर पहुंचे तो हमें कुछ फिसलने वाली कंकरीली जगह से ऊपर चढ़ना पड़ा। जिसमें हमारे कदम ऊपर चढ़ने की बजाए पीछे हटने लगते थे। बड़ी कठिनाई से हमने वह छोटा सा भाग पार किया। जैसे ही हम एक चट्टान के ऊपर पहुंचे तो हमें शिवलिंग की वह गगन चुम्बी शिखा बिल्कुल पास स्पष्ट दिखने लगी। मैं दल के आगे था मेरे पैर अनायास ही हल्के से हो गए और मैंने पताका फहराते हुए दुर्गम मार्ग की परवाह न करते हुए शिखा की ओर अपना अभियान तेज किया। मैं ज्यों ही एक बहुत अड़े सीधे पत्थर से सिर निकाल कर ऊपर को उछला तो सामने ही श्री शिवलिंग की महान शिला लगभग ५० गज की दूरी पर दिखने लगी। मैं कुछ क्षण के लिए आत्म विभोर सा खड़ा रहा तदनन्तर मैंने अपनी दृष्टि को चारों ओर घुमाया तो देखा चारों ओर विस्तृत नील गगन अपनी अनन्तता में व्याप्त हो रहा था। नीचे धुन्ध की सेना प्रकृति के उन प्रहरी ऊंचे-ऊंचे हिम गिरी खण्डों को घेरने का प्रयत्न कर रही थी।

दूसरे ही क्षण में, मैं कुछ ही कदमों के बाद शिवलिंग वाली शिला पर एक दरार में अपनी पताका टिका कर स्वयं को साष्टांग प्रणाम के हेतु शिव भगवान के चरणों में लिटा दिया। मैं उठ कर बैठ गया और एक अल्प समाधी में लीन होकर शिव चिन्तन करने लगा। तब ही मुझे आभास हुआ कि किसी का हाथ मेरे ललाट से स्पर्श हो रहा है। मैंने हवा का झोंका समझ कर अपनी आंखों को मूंद के रखा और ध्यान में पुनः लीन होने लगा तभी पुनः किसी के स्पष्ट हाथ का पूर्ण स्पर्श मेरे सिर पर हुआ, मैं चौंका, आँखें खोली और देखा सामने बड़ी-बड़ी शिलाओं के कोई प्राणी न था। अभी तक मेरे साथी शिखर पर पहुंच न पाये थे। मैं सामने एक शिला पर बैठ गया। मुझे पीठ के पीछे अपने साथी श्री मस्तराम चौहान का जय शिव शंकर का स्वर सुनाई दिया। मैंने खड़े हो कर उत्तर में जोर से शिवाय नमः का स्वर दोहराया। उस समय घड़ी में १० बजने को १० मिन्ट बाकी थे। सब साथी शिवलिंग के सामने शिला पर इकट्ठे हो गये थे। हमने शीघ्र ही धूप जलाया और प्रशाद जिसे हम थाचरंग डाबर से बना कर साथ लाये थे शिव के चरणों में अर्पण करने के लिए शिवलिंग के पास चले गये। हमने पुष्प और नारियल भी भेंट किया। भेंट चढ़ाने के बाद बैठ कर शिव स्तुति गान किया। फिर वापिस पीछे आकर हम सब एक बड़ी चट्टान पर बैठ गये वहां हमने स्टोव द्वारा चाय बनाई और गर्म चाय के साथ दिन का खाना खाया। खाना खाते-खाते धुन्ध तेजी से शिवलिंग वाली विशाल शिला को लपेटने लगी जिस से हमारे चित्र

लेने में भारी रुकावट आने लगी। हमने जैसे तैसे शिवलिंग के चित्र खैंचे और थोड़ी देर के लिए भंगड़ा लगाया। हम एक अनन्त शान्ति में खो गये।

आखिर शिवलिंग क्या है ? यह एक चपटी खड़ी चट्टान है जो एक अध-खुले दायें हाथ की भान्ति खड़ी है। यह लगभग ६० फुट ऊंची और ७ फुट मोटी तथा लगभग ५० फुट चौड़ी है। यूं तो इसका रंग साधारण फीका लाल और फीका पीला है फिर भी इस भारी शिला को देखने से एक अपार आकर्षण और रहस्य सा लगता है। सम्भवतः यह प्रभु की उस माया का एक मात्र कारण होगा कि जिस माया में धन्ना जाट जैसे भक्त प्रभु को पा गये। इसी प्रकार से इस अद्भुत पाषाण शिला का एक विशेष महत्व है जो यात्री के दुर्गम मार्ग की थकावट को न जाने क्षण भर में कहां फैंक देती है। हम २-५० मिन्ट तक शिखर पर रहे। उसके पश्चात् हमने अपनी यात्रा एक आश्चर्यजनक संकेत से वापिस प्रारम्भ की। कहीं पास ही कोई ढांक गिर कर नाले में जा पड़ा, धुन्ध के कारण कुछ न दिख सका। हम १२ बज कर ३० मिन्ट पर वापिस चल पड़े। वापसी में तिखी उतराई में उतरना बहुत ही कष्टदायक तथा संकटमय था। मेरी तो ऊनी पेन्ट पीछे से बिल्कुल फट गई थी और वही हाल रत्न चाचू की पेन्ट का हुआ।

हम जैसे ही झील वाले गलेशियर पर पहुंचे वैसे ही हमें लगा कि हमें भगवान शिव ने अपनी सहानुभूति के साथ सुरक्षित अपने आंचल में ला उतारा हो। ऊपर शिवलिंग के पास हमारी पाताका पूरे वेगसे फहराती दिखाई दे रही थी। मानो हमारे वापिस जाने का अभिवादन कर रही हो। हम उतराई में तेजी से अपनी पहली शाम वाली थाचरंग गुफा की ओर दौड़ पड़े। वहां पहुंच कर हमने चाय पी और नेगी मेहरचन्द से अन्तिम विदा ली। थाचरंग गुफा से ३ बजे सायं हम नीचे तंगलिग गांव की ओर चल दिए। हमने रात तंगलिग गांव के ऊपर एक प्राकृतिक गुफा में बीताई और दूसरे दिन ११ जुलाई १९७७ के प्रातः का खाना पवारी पड़ाव पर स्वयं बना कर खाया। ठीक १२ बजे हम पीओ पहुंचे। तब तक फोटोग्राफर सरदार त्रिलोचनसिंह ने हमारी वे तीन रीलें धो कर तैयार कर रखी थीं जो हमने पवारी पहुंचते ही एक आदमी के पास उस तक भेजी थीं। हम ठीक २-३० सायं कालपा पहुंच गये। पहुंचते ही हमने जिलाधीश के कार्यालय में अपनी पहुंच की रिपोर्ट दी। यह यात्रा आधुनिक युग की प्रगतिशील पीढ़ी के लिए एक महान प्रेरणा सिद्ध होगी कि किस प्रकार से प्रकृति से हंसते-हंसते खिलवाड़ और उस पर विजय पाई जा सकती है।

गीत नाटक एवं नृत्य क्षेत्र में
अकादमी की गतिविधियां

–अशोक हंस

हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा मास जुलाई से मास दिसम्बर, १६८० तक गीत, नाटक एवं नृत्य के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किए गए :

लोक गीतों का प्रलेखन कार्य :

लोक गीतों का प्रलेखन कार्य योजना के अन्तर्गत दिनांक १५ अगस्त से १८ अगस्त १६८० तक शिमला जिला के चौपाल तहसील के विभिन्न ग्रामों नेरवा, लिंगजार, झोखड़, खद्दर, चौपाल में वहां के लोक गायकों से लगभग साढ़े तीन घण्टे की अवधि के ऐतिहासिक, सामाजिक, भावात्मक लोक गीत रिकार्ड किए गए। इनमें से मुख्य गीत दुनिया, वीणी, भागचन्द, सनाई और पूजाई, तोतू एवं अन्य नाटी और प्रेम गीत हैं। गायकों में सर्वश्री देवूराम, महेन्द्रसिंह, जालमन, हरनामसिंह, निक्का राम, सीताराम, मिसरु, रामलाल मेहता तथा रोशनलाल थे। माननीय अकादमी सदस्य एवं विधायक श्री राधा रमन शास्त्री ने इन क्षेत्रों में दौरा कर इस कार्य के लिए पूर्ण सहयोग दिया। चौपाल क्षेत्र में यह कार्य श्री शास्त्री जी के संचालन में हुआ।

मास अक्तूबर में तिब्बती-वर्मी भाषा भाषी क्षेत्र किन्नौर में लोक साहित्यिक तथा लोक गीतों का प्रलेखन कार्य किया गया। किन्नर क्षेत्र में गीतों एवं गीतों की धुनों को रिकार्डित किया गया। जो निम्न प्रकार से है :

१. सूङ्नम नेगी लामा का गीत।
२. मायाराम का गीत।
३. शिवरात्रि का गीत।
४. फुल्याच का गीत।
५. काश्मीर मेले के गाने की धुन।
६. बीस भादों जाग्रों की धुन।
७. दीवाली की धुन।
८. फुल्याच की धुन।
६. साज़ों की धुन।
१०. सुस्कर की धुन।
११. सङ्गीथड़ की धुन।
१२. देवता के स्वागत की धुन।
१३. सुंगरा महेश्वर का खादुरा गांव जाने का गीत।
१४. ब्रह्ममहुर्त तथा सायंकालीन प्रार्थना में बजाए जाने वाली धुन।
१५. शादी की धुन।
१६. बीशू के गाने की धुन।
१७. डकरेणी के गाने की धुन।

निरमण्ड में बूढ़ी दीवाली का प्रलेखन :

हिमाचल प्रदेश के जिला कुल्लू के आऊटर सिराज क्षेत्र में स्थित गांव निरमण्ड अपनी बहुत सी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है। वैसे भी यह सम्भवतः हिमाचल प्रदेश का सबसे बड़ा गांव है, जिसकी जनसंख्या लगभग पांच हजार है। इसे मन्दिरों का गांव भी कहा जाता है। वैसे तो इस गांव में अन्य कई त्यौहार मनाए जाते हैं लेकिन कार्तिक मास में दीपावली के त्यौहार के ठीक एक मास बाद मग्घर मास में अमावस्या के रोज 'बूढ़ी दीवाली' का आयोजन अपने में एक विशेषता लिए है। इस दिन विधिवत् पूजन के पश्चात् पांच मोटे-मोटे और बड़े-बड़े लकड़ी के ठेलों को जलाया जाता है, जिन्हें 'पांच रौठ' कहा जाता है। पूजन के पश्चात् ब्राह्मण परिवार के लोग इस अंगीठे की परिक्रमा करते हुए कण्डी कथा गाते हैं। 'कण्डी कथा' के अठारह खण्ड हैं। ब्राह्मण परिवार के लोग केवल अढ़ाई परिक्रमाएं ही करते हैं। उसके बाद अपनी पुरानी रीतियों के अनुसार राजपूत तथा अन्य जातियों के लोग परिक्रमाएं करते हैं।

कण्डी कथा प्राचीन पहाड़ी बोली में गाई जाती है और अचम्भे की बात तो यह है कि इसे गाने वाले भी इस कथा का पूरा अर्थ नहीं समझते परन्तु इतना प्रायः निश्चित है कि कथा का सम्बन्ध पांडवों और कौरवों से है। पांडवों की संख्या पांच ही है परन्तु कौरवों की संख्या साठ बताई अथवा गिनाई जाती है। 'कण्डी' की ग्यारह लड़ियां गाए जाने के बाद सर्प नृत्य होता है। सर्प स्थानीय घास (बग्गड) से बनाया जाता है। सर्प बनाने का काम हरिजन परिवार के लोग करते हैं। जब सर्प नृत्य चल रहा होता है तो ब्राह्मण परिवार के लोग बाकी की सात लड़ियां कण्डी की गाते हैं। कण्डी गाने की शुरुआत फकीरी परिवार के लोग अंगीठा जलाने के समय ही शुरु करते हैं।

निरमण्ड की स्थापना के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि इस स्थान पर त्रेता युग के भगवान परशुराम ने तपस्या की थी।

निरमण्ड भूण्डा के लिए भी प्रसिद्ध है। भूण्डा पर नरबलि का आयोजन होता था परन्तु अब नर बलि न देकर बकरे की बलि दी जाती है।

प्राचीन काल में भूण्डा दो वर्षों के अन्तराल से आयोजित किया जाता था। बाद में यह आयोजन १२ वर्षों की अवधि में बांट दिया गया। हर तीन वर्षों के बाद छोटे-छोटे उत्सव होने लगे। परन्तु कालान्तर में यह प्रथा भी ढीली पड़ती गई। पिछला भूण्डा सन् १९६२ में हुआ था और अब १९८१ में आयोजन की तैयारियां की जा रही हैं।

प्रलेखन योजना के अन्तर्गत इस ऐतिहासिक गांव में भूण्डा विवरण के अतिरिक्त लगभग २२ संस्कार गीतों की रिकार्डिंग की गई। मुख्यतः विवाह गीत और छिंज गीतों की रिकार्डिंग की गई। कण्डी गीत के अधिकांश भाग को भी प्रलेखित किया गया।

बाल रंगमंच का विकास :

इस योजना के अन्तर्गत मास नवम्बर में श्री विजय तेन्दुलकर द्वारा लिखित नाटक 'पापा खो गए' तैयार किया।

साहित्यकार/कलाकार विवरणिका :

हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित की जाने वाली प्रदेश की साहित्यकार/कलाकार विवरणिका का सम्पादन कार्य आरम्भ हुआ। लगभग २०० प्रविष्टियों का हस्तलेख तैयार किया गया। विवरणिका प्रकाशित करने के लिए शीघ्र प्रैस में भेजी जा रही है।

छात्रवृत्तियां :

कत्थक कला केन्द्र नई दिल्ली में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हिमाचली छात्रा कुमारी चन्द्रप्रभा को २००/- रुपए प्रति मास की छात्रवृत्ति दी जा रही है।

सांस्कृतिक संस्थाओं को वित्तीय एवं तकनीकी सहायता :

क्र०	संस्था का नाम	वित्तीय सहायता	तकनीकी सहायता	उद्देश्य
१.	विवेकानन्द केन्द्र, शिमला	१५००/- रु०		सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए
२.	हिमाचल थियेटर, शिमला	२५००/- रु०		नाटक आयोजन के लिए
३.	हिमाचल कल्चरल डिवैलपमैंट प्रोग्राम, दिल्ली	५०००/- रु०	वेश-भूषा के रूप में सहयोग	दिल्ली में हिमाचल नाइट आयोजन करने के लिए
४.	स्टेज गैंग, धर्मशाला	४०००/- रु०		सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए
५.	पर्वतीय लोक मंच दाड़वा, सोलन	८००/- रु०		सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए
६.	शिल्पा प्रोडक्शन		प्रकाश यन्त्रों के लिए	नाटक के आयोजन के लिए
७.	हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय		वेश-भूषा के रूप में सहयोग	सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए
८.	पोर्टमोर राजकीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला, शिमला		वेश-भूषा के रूप में सहयोग	सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए
९.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, शिमला		वेश-भूषा के रूप में सहयोग	सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए

—:००.—

पुस्तक समीक्षा :

फूल और आंसू – मेरी दृष्टि में

–गायत्री शर्मा

फूल और आंसू के सफल प्रकाशन में कवि ने शुभ-चिन्तकों की हार्दिक प्रेरणा को प्राथमिकता दी है। किन्तु मुझे लगता है कि युवा कवि के व्यक्तित्व में जो एक सुन्दर खिले हुए फूल के समान है अवश्यमेव कोई ऐसा घड़ी-पल आया है, जो घड़ी-पल यद्यपि भूतकाल की गोद में समायित है किन्तु उन क्षणों में नियति और विरह की पीड़ा को लेकर कवि ने जिन आंसुओं की धारा प्रवाहित की है, वही आश्रु बिन्दु शायद 'फूल और आंसू' के परिचायक बन पड़े हैं। मेरी समझ कवि के व्यक्तित्व का परिचय करवाने के लिए उसी प्रकार ललायित हुई है जिस प्रकार एक भ्रमर सहज में ही सुन्दर फूलों के प्रति आकर्षण भाव से लालायित हो उठता है। डा० सारस्वत के शब्दों में, मैं इस बात को हार्दिक रूप से स्वीकारती हूं कि कवि ने 'ह्रास, रुदन, बेदना, पीड़ा' को व्यापक सामाजिक आधार देकर बहु जन सन्वेदनीय बनाने का जो प्रयास किया है, वह उसके अहम् से मुक्ति का सराहनीय प्रयास है। इसके साथ विचार काव्य की गरिमा को जिस प्रकार से उद्घाटित करता है उस सराहनीय प्रयास की कड़ी में युवा कवि श्री ठाकुरदत्त शर्मा 'आलोक' की ये पंक्तियां स्तुतीय बन पड़ी हैं :—

ज्योति दीप लिए आते हैं ज्योतिमय करने तुझ को
पर मम् जीवन के तिमिराच्छादित
घन तम को ज्योतिर्मय कर दे।

प्रस्तुतः काव्य संग्रह में युवा कवि ने देश के किसान के श्रम प्रधान व्यक्तित्व की भी प्रशस्तिपूर्ण शब्दों में वकालत की है। कवि कहता है :—

उसके परिश्रम की हर मस्ती
झूमने लगती है—
किसान झूमता है—
झूम उठता है मेरा देश—
वह है अन्नदाता
खेतों में ही निज प्यार लुटाता
पंचतत्व हैं इसके साथी
किसान तो है जगराज।

अपनी कर्म परख दृष्टि का अवलम्बन ले कवि इस बात के प्रति आश्वस्त है कि :—

मानव का अन्तर्मन भी छटपटाता है
पर—
कर्मों के बन्धन से
मुक्ति कहां ?
मैंने जाना मानव कर्मों का बन्दी है।

और इसके साथ मेरे लिए जो सन्तोष की बात है, इसके आधार पर मैं दावे से कह सकती हूं कि कवि की कर्म परख दृष्टि जन हिताय की सद्भावनाओं से समाज को झांकती है तभी कवि कहता है :—

हर दानी ने—
तन धन तक लुटाया है
हर वेदपाठी ने—
खुद को मन्त्रों को दिया है
हर भले आदमी ने—
नेकी की है और
स्वयं को अग्नि में तपाया है।

कवि के व्यक्तिगत जीवन को लेकर जब मैं विचार करती हूं तो मुझे लगता है कि कवि का जीवन कुछ विशेष परिस्थितियों के मध्य से गुजरता रहा है। और संकल्प विकल्प से उलझता कवि कांटों से पांवों में छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् भी कवि साहस का अवलम्बन लेकर स्वार्थी समाज की परवाह न करते हुए जीवन में कुछ करने की लालसा से अपने भविष्य के प्रति आशावान है और इस लिए कवि कर्मशील बन कर इस निष्कर्ष पर पहुंच पाया है कि :—

दर्शन प्रकृति का ये अमर संकेत है।
कर्म करते रहने से ही—
मिल सकती है—
संसार में तम से ज्ञान की जोत है—

देव भूमि कुल्लू में जन्म लेकर कवि ने निरीह भाव से कुल्लू की सादगी की आरती उतारी है, तभी कवि कहता है :—

मुझे यह कुलूत देश की
सुरमयी घाटियां प्रिय हैं—
यहां के गगनचुम्बी टीले
मेरे अर्चनीय देवालय हैं
मेरा यह कुलूत देश
देव भूमि है।

यौवन की दोपहरी में कवि प्रेम सौन्दर्य रोमांस के प्रति भी प्यासा बन पाया है। इसलिए कवि कभी पपीहन से, कभी फूल से और कभी भ्रमर से अथवा कभी झिंगुर से ही प्रश्न कर बैठता

है कि प्रेम क्या है ? और शायद प्रत्युत्तर में वे सभी अपने अनुभव की बात कवि से इस प्रकार करते हैं :—

मत अब प्रेम की परिभाषा पूछो
प्रेम मुरझा जाता है।

अपने हाथों में कलम पकड़ कर प्रेम की रीत की उलझन से उलझते हुए और परीक्षा की अग्नि में जलते हुए न जाने नियति वश कवि के प्रेम में काव्य का हर अध्याय क्यों अधूरा ही रहा है और कवि को हर बात का गहरा दुःख भी है। इसलिए कवि कहता है :—

हर कवि की कलम से भी
मैं कुछ लिखता ही रहा—
दुःख मुझे इस बात का हुआ कि
आज भी मेरे काव्य का–
हर अध्याय अधूरा ही रहा।

इसके साथ आचार्य हरिश्चन्द्र राय के विचारों से मैं पूर्ण रूप से सहमत हूं कि प्रकृति के विभिन्न रूप कवि के मन में जिज्ञासा उत्पन्न कर उसे रहस्य से अभिभूत कर देते हैं। अपने अध्यापकीय व्यवसाय के मूल हेतू कवि का व्यक्ति दार्शनिक बन कर जन्म में मृत्यु और वसन्त में पतझड़ के दर्शन करने में उतारू हुआ है। डा॰ कैलाश चन्द्र अग्रवाल के शब्दों में प्रकृति पूजक कवि को समाज के मानस पटल पर सत्य का बोध हुआ है, जिसमें सत्यमेव कवि समाज को भी देना चाहता है। श्री राधा रमन शास्त्री के अनुसार इस कविता संग्रह में जीवन की यथार्थ अनूभूतियों का कतित्व पूर्ण लेखा समाज के लिए सावधानी व शिक्षा दोनों रूपों में उपादेय है। श्री सी·आर·वी· ललित के अनुसार युवा कवि ने कल्पना की खुली उड़ान दी है। और जहां एक ओर इनकी कविताओं में आक्रोश उद्वेलित होता है। वहां दूसरी ओर उल्लास भी छलकता है। श्रीमती सन्तोष शैलजा ने इस काव्य संग्रह 'फूल और आंसू' को मां सरस्वती के चरणों में प्रथम सुमनांजलि मान कर इस संग्रह के काव्य संग्रह को इस प्रकार उद्‌घाटित किया है। कवि ने इस संग्रह में विविध भावों को शब्दों में बांधने का प्रयास किया है। भाषा भाव अनुरूप मधुर एवम् प्रांजल बन पड़ी है। कविताएं कहीं माधुर्य हाव भाव प्रस्तुत करती हैं तो कहीं तिखा व्यंग्य करती हैं।

अपने आशावान जीवन में कवि ने जिस तन मन को ज्योतिर्मय करने का संकल्प किया है अन्त में कवि के शब्दों में ही आशा का दीप जल रहा है तभी कवि कहता है :—

पर उसके आशा के दीप में–
निराशा का तम नहीं
आशा का दीप जल ही रहा है।

अन्त में निर्विवाद रूप से ये कहा जा सकता है कि प्रदेश के इस उदीयमान कवि से जहां साहित्य की सम्पदा में आपार वृद्धि होगी वहीं ये युवा कवि श्री ठाकुर दत्त शर्मा 'आलोक' अपने साहित्यिक विभूतियों के आधार पर एक राष्ट्रीय साहित्यकारों की पंक्ति में भी खड़ा होगा।

अध्यापिका आर्य कन्या पाठशाला
शिमला

सोमसी

पहाड़ी साहित्य – इतिहास एवम् समीक्षा
पहाड़ी में नाटक लेखन

–बलदेव कुमार ठाकुर

हिमाचल प्रदेश में लोक-नाट्य परम्परा बहुत प्राचीन और विस्तृत रही है। सोलन जिले का बरलाज, कुल्लू का हरण, किन्नौर का होरिंग-पन्ने, कांगड़ा का भगत, और चम्बा का हरणेतर इतने पुराने लोक-नाट्य हैं जितनी पुरानी रामायण और महाभारत। इन लोक-नाट्यों में स्थानीय भाषा का मधुरतम रूप भी देखने को मिलता है। सिरमौर और शिमला क्षेत्र का करियाला, मण्डी और बिलासपुर का बांठड़ा, हमीरपुर और कांगड़ा क्षेत्र की चन्दरौली, स्वांग तथा लीला-नाट्य लोकानुरंजन के विशिष्ट आयोजन हैं जो पहाड़ी जनमानस को अद्भुत मनोरंजन प्रदान करते रहे हैं। कांगड़ा क्षेत्र का बाल-नाट्य 'रली' शिमला का युद्ध-नाट्य 'ठोडा' तथा चौपाल क्षेत्र के 'बुड़ा और सिंह' आदि-काल से अत्यन्त लोक-प्रिय खेल रहे हैं। देऊ खेल यद्यपि नाम और परम्परा से देवताओं क खेल है, परन्तु प्रकृति से यह मौन और एकल अभिनय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

यह सभी लोक-नाट्य पहाड़ी भाषा में प्रस्तुत होते हैं परन्तु इनकी कथावस्तु सर्वदा अलिखित रही है। किसी भी प्राचीन लोक-नाट्य का लिखित रूप नहीं मिलता। अतः हिमाचल प्रदेश में जहां लोक नाट्यों का आयोजन बहुत प्राचीन रहा है वहां पहाड़ी में नाटक-लेखन की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। वह अभी अत्यन्त शैशवावस्था में है। पहाड़ी में नाटक-लेखन की कला तथा प्रकाशित नाटकों के आधार पर प्रदर्शन बारह-तेरत वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। सम्भवतः श्री चन्द्रशेखर बेबस का **'धोर'** सबसे पहला नाटक है जो पहाड़ी में लिखा और हिम-भारती के जून १९६९ अंक में प्रकाशित हुआ है। इसके चार दृश्य हैं और विषय परिवार नियोजन है। अतः नाटकों की प्रचारात्मक श्रेणी में आता है। इसके कुल्लू क्षेत्र में अनेक स्थानों पर अनेक बार प्रदर्शन हुए हैं। इसमें परिवार नियोजन की इतनी अच्छी वकालत की गई है कि अन्त में लेखक अपने उद्देश्य से सफल रहा है। शेखर जी के उसके बाद तीन और नाटक प्रकाशित हुए हैं – हिमभारती जून, १९७० अंक में **'मोड़'** कांगड़ी बोली में चार दृश्यों का पूरा नाटक है, और भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित नाटक संग्रहों में **'आरशू'** और **'कबौत'** कुलुई में है। शेखर जी की नाटक-शैली प्राचीन परस्परा और नवीनता का सम्मिश्रण है, परन्तु उनकी लयात्मक शैली अधिक चुस्त, गतिशील और मनोरंजक प्रतीत होती है। बेबस जी इसमें बड़े चतुर हैं—**"हाईएं सो गल ता ना मैं जाणी, पर ए जूब किभीबे आणी, हाजी आगलीए नी हुई पराणी। तूबी साए काणी।"** कवि होने के नाते श्री बेबस अपने नाटकों को काव्यात्मक तत्त्वों से सजाते हैं। इससे मंचीय प्रभाव अधिक प्रभावी और गतिशील होता है। उनका कबौत मुकदमेबाजी की बुराई पर कठोराघात है। कचहरी का रास्ता सचमुच 'कबौत' अर्थात् बुरा रास्ता है, जिससे बचने के लिए नाटक में पूर्ण समाधान प्रस्तुत किए हैं।

बेबस के घोर के तुरन्त बाद श्री मदन मोहन कमल का **'पतारे'** एकांकी हिम-भारती सितम्बर, १९६९ अंक में प्रकाशित हुआ है। इसका कथानक भी परिवार नियोजन पर आधारित है। श्री कमल के दो और लघु नाटक **'फर्ज'** तथा **'और शहनाई बैज उठी'** हिम भारती सितम्बर, १९७० तथा मार्च १९७२ अंकों में प्रकाशित हुए हैं। इन तीनों नाटकों की मुख्य कमजोरी भाषा की खिचड़ी है। श्री कमल को अपनी भाषा पर कोई नियंत्रण नहीं है। मूल में वे सिरमौरी बोली में लिखना आरम्भ करते हैं परन्तु तुरन्त ही हिन्दी पर उतर आते हैं और फिर सिरमौरी में बात समाप्त करते है। इसलिए अपनी बात बलपूर्वक नहीं कह पाते। परन्तु जब भी वे पहाड़ी में बात करते हैं वहां ग्रामीण वातावरण की स्पष्ट झांकी झलकती है—**"मरण जोगे, मिटण जोगे, खा जाए तम्हनो काला सांप। ले जा तम्हनो ढाई घड़ी की मौत। थाणे क्या होए जमदूत बणगे।"**

इन्हीं आरम्भिक चरणों में प्रो० पीयूष गुलेरी का **'नमोड़ा'** हिम भारती दिसम्बर १९६९ अंक में प्रकाशित हुआ है। सम्भवत: यह गुलेरी जी का पहाड़ी में पहला और अन्तिम लघु नाटक है क्योंकि उसके बाद वे लोकप्रिय कवि के रूप में अधिक उभर कर हमारे सामने आये हैं। परन्तु इतने पर भी उन्होंने पहाड़ी भाषा की गद्य शैली पर अपनी पक्की पकड़ की स्पष्ट झलक दिखाई है।

नवम्बर १९७१ में राज्य भाषा संस्थान, शिक्षा विभाग ने पहला पहाड़ी लघु नाटक संग्रह **'प्रेखण'** प्रकाशित किया। इसमें श्री चन्द्रमणि विशिष्ट का 'जब तिनके बिखरी गोवे', श्री काहनसिंह जमाल का 'एक चुटकी लूण', श्री रत्नसिंह हिमेश का 'नम्बरदारी', श्री चन्द्रशेखर बेबस का 'आरशू', श्री मौलूराम ठाकुर का 'शाहुरा नी घालिदा', श्री शबीर कुरैशी का 'असें सब इक हैं', श्री रामकृष्ण कौशल का 'गहराई', श्री दलीप वर्मा का 'चिड़ी छिक्का' और श्री हरिप्रसाद सुमन का 'निहारा' नौ लघु नाटक संगृहीत हैं। शिल्प की दृष्टि से ये सभी मंच पर प्रदर्शनीय हैं और लगभग सभी का एकाध बार विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शन भी हुआ है। परन्तु रूपाकार की दृष्टि से केवल श्रीं चन्द्रशेखर बेबस का आरशू पूर्णाकार का है। चिड़ी छिक्का, गहराई और जब तिनके बिखरी गोवे एकांकी हैं और शेष केवल लघु नाटिकाएं या झलकियां हैं चिड़ी छिक्का को छोड़ कर जो सुन्दर हास्य नाटिका है, शेष सभी में किसी न किसी सामाजिक समस्या का समाधान प्रदर्शित है। 'जब तिनके बिखरी गोवे' में सिरमौर जिला में प्रचलित कुप्रथा 'खांद' पर गहरा कटाक्ष है। 'एक चुटकी लूण' में पुरानी कुरीतियों और आधुनिक जागरूकता के बीच वर्तमान सामाजिक संघर्ष का चित्रण प्रस्तुत है। ग्रामीण समाज में नम्बरदार राजा होता है उसका विरोध करना कितना कठिन है यह बात श्री हिमेश के 'नम्बरदार' से स्पष्ट होती है। आरशू सचमुच वर्तमान समाज का दर्पण है जिसमें परिवार नियोजन, पंचायती राज, लघु बचत, स्थानीय मेला आदि अनेक विषय प्रस्तुत हैं। नई बहू को ससुराल की परिस्थियों में ढलने के लिए कितनी परेशानियां उठानी पड़ती हैं यह 'शाहुरा नी घालिदा' में प्रदर्शित है। 'असें सब इक हैं' में छुआ-छूत का खण्डन किया गया है। 'गहराई' में शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच की खाई दर्शाई गई है और 'निहारा' में निरक्षरता के कारण अन्धकार पर प्रकाश डाला गया है।

'लछमियां रा वरदान' नाम से श्री मोतीलाल घई का हिमभारती दिसम्बर १६७० में तीन ग्रंकों का मण्डियाली में नाटक प्रकाशित हुग्रा है। इसके दृश्य इतने छोटे हैं कि मंच पर प्रस्तुत करने के योग्य नहीं हैं, परन्तु घई जी इसमें दहेज प्रथा पर नाटकीय ढंग से गहरी चोट करने में सफल हुए हैं। "**चन्द्रा, चन्द्रा। तिजो क्या होई गया। दौड़ो ग्रो लोको। हाऊं तां डूबी गया। हाय मेरी चन्द्रा। ग्रोए कोई चन्द्रा जो बचाई लवा।**" पहाड़ी के नाटक क्षेत्र में श्री ग्रमरनाथ वशिष्ट का विशेष योगदान है। उनका पहला नाटक **'मिट्ठी कैंची'** हिम भारती मार्च १६७१ ग्रंक में २७ पृष्ठों में पूरे ग्राकार का प्रकाशित हुग्रा है। ग्रामीण क्षेत्र में साहुकार की कैंची इसका विषय है, जिसे साहुकार के नये समाज में पले पुत्र ने स्वयं तोड़ दिया है। श्री वशिष्ट के तीन ग्रौर पूर्णाकार नाटक **सुखना', 'ब्याह'** ग्रौर **'ग्रह'** हिम भारती के जून १६७२, सितम्बर १६८३ ग्रौर जून १६७६ ग्रंक में प्रकाशित हुए हैं। शिल्प की दृष्टि से ये चारों नाटक रंगमंचीय हैं ग्रौर 'ग्रह' को छोड़ कर सभी सुखान्त हैं। यही इनमें सबसे कमजोर नाटक भी है। ग्रह के कारण वे चार भाइयों के परिवार को एक पुत्र न दे सके ग्रौर वंशावली तोड़ दी। 'सुखना' में सैनिक-सेवा-प्रिय परिवार का सुन्दर सुखद चित्रण प्रस्तुत है, जिसके लिए सारा हिमाचल ग्रौर विशेषत: कांगड़ा, बिलासपुर ग्रौर हमीरपुर का क्षेत्र सुप्रसिद्ध है। ब्याह में दहेज प्रथा का परिसमापन्न हुग्रा है। श्री वशिष्ट की भाषा बड़ी सरल, सुबोध ग्रौर मुहावरेदार है जिससे नाटक बड़े मनोरंजक बन पड़े हैं —"**ग्रज मेरा डमाक तेरे पुत्ते होर मेरे गर्जे बिलकुल बदलात्या। पर हऊं सगंद खाई ने बोला हां भई कदी बी एढ़ी मिट्ठी कैंची किसी पर बी नी चलांगा। हुण मेरीया जाइदादा जो मेरा मुण्डू संभाली लये। मैं कितू रे पापां नाश करने जो परमेसरा रा ना लैणा।**"

स्वर्गीय श्री विजयकुमार पण्डित की ग्रनेक झलकियां हम उन्हीं की वाणी में कई बार ग्राकाशवाणी पर सुनते ग्राए हैं। वे सफल ग्रभिनेता ग्रौर पहाड़ी के कुशल नाटककार थे। उनके दो पहाड़ी नाटक **'भगत होर भगवान'** तथा **'ग्रद्भुत न्याय'** हिम भारती सितम्बर १६७१ तथा जून १६७४ ग्रंक में प्रकाशित हुए हैं। 'भगत ग्रौर भगवान' में श्री कृष्ण ग्रौर सुदामा की पौराणिक कथा को पहाड़ी रूप दिया गया है। इसमें पौराणिक घटना ग्रौर पहाड़ी जन-विश्वास का सुन्दर सामंजस्य हुग्रा है। यह छः दृश्यों का पूर्ण नाटक है। 'ग्रद्भुत न्याय' भी पौराणिक कथा का पहाड़ी रूप है जिसमें एक शिशु के बारे में दो माताग्रों के बीच झगड़े में राजा भोज ग्रौर एक ग्वाले के ग्रलग-ग्रलग निर्णयों का उल्लेख है जिसमें ग्वाले का निर्णय उचित न्याय सिद्ध हुग्रा है। जब शिशु की वास्तविक मां ने शिशु के दो टुकड़े करने नहीं दिए तो ग्वाले ने तुरन्त निर्णय दिया— "**उठ माई, बच्चा तेरा ग्रसौ। एस सम्भाल। न्याय करी दित्ता भगवाने। माता री ममता का बड़ा कोई साक्षी नी ग्रसौ। जे दूजी माई रा बच्चा हुन्दो तो इशा खड़े-खड़े तमासा न देखदी।**"

श्री शिव उपाध्याय के दो लघु नाटक **'चुल्ली दा शेर'** ग्रौर **'वगत दी उग्राज'** हिम भारती मार्च १६७७ ग्रौर सितम्बर १६७७ ग्रंक में प्रकाशित हुए हैं। चुल्ली दा शेर' एक ग्रच्छी हास्य नाटिका है। '**गिया। सभ किछ गिया। बीड़ियां दे टोटे। पराणी दुग्रन्नी। चाबियां दा गुच्छा। होर ता होर कपड़े भी। एह ग्राया सेले मारने दा कम्म। घरें जां ता तिसा रंडे खरीह करदेया पौणा। इयां मेरी गलाबो भोली भी है। चलो कोई टारा टप्पा लांगे।**" 'वगत दी उग्राज' ग्राकाशवाणी पर ही सुनाया जा सकता है। मंच का नाटक नहीं है।

१९७६ में भाषा एवं संस्कृति विभाग ने पहाड़ी में एक नाटक-लेखन प्रतियोगिता आयोजित की थी। लगभग चालीस नाटकों में तीन नाटक सर्व श्रेष्ठ घोषित हुए थे—श्री काहनसिंह हमाल का **'होश'**, श्री नरेन्द्र अरुण का **'काली रात – नवीं भ्याग'** और श्री मुलकराज शांतवी का **'संजीवणी बूटी'**। तीनों बीस सूत्री कार्यक्रमों पर आधारित हैं। 'संजीवणी बूटी' में अध्यापक कहता है—**"अपणी-अपणी डफली, अपणा-अपणा राग आला सहाब होई गिया था। जे कोई भी था सारे ही चौधरी बणी गयो थे। अनुशासनता बिलकुल नी रिहा था। लोक कुथी भी कम्म करी ने राजी नी थे।** 'काली रात – नवी भयाग' एकांकी है। 'होश' में चार और 'संजीवणी बूटी' में छः दृश्य है। तीनों मंचीय नाटक हैं। श्री नरेन्द्र अरुण ने स्वतन्त्र रूप से एक और नाटक भी लिखा जो **'लद्दाखा किनारे'** नाम से पुस्तकाकार में प्रकाशित है। सम्भवतः निजी प्रयत्नों से प्रकाशित यह पहला पहाड़ी नाटक है जो जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, भारत–पाक युद्ध पर आधारित है।

डॉ० आत्माराम जितने अच्छे निबन्धकार हैं उतने ही सफल नाटककार भी हैं। हास्य और व्यंग्य उनका मुख्य प्रयोजन है। यह बात उनकी पुस्तक **'चुंगां ते ठोलू'** से स्पष्ट होती है। इस पुस्तक में उनके सत्रह लेख तथा तीन लघु एकांकी संगृहीत हैं। इनमें से 'चाह-चपड़ासी' में चाय-नोशी पर कटु व्यंग्य प्रदर्शित हैं। 'पर कंह' में आज कल के कालेज जीवन पर सीधा कटाक्ष है। छः दृश्यों के इस एकांकी में रट्टा-बाजी से लेकर, क्षुद्र प्रणय-आलाप, प्राध्यापकों पर मजाक, पुरानी और नई पीढ़ियों के बीच संघर्ष और हड़ताल तक सभी विषय प्रदर्शित हुए हैं। परीक्षा में नकलबाजी का दृश्य देखें—**"अरा, भोला कजो बणावा। सारे लोक स्कूल कालेज पुजी नकल करांदे। परचू भेजदे। तिगड़म लड़ांदे। आसे कुहदे माह मारेयो। टाइप नी ता लिखेया जवाब कोई पजांगा ही पजांगा।"** 'रोसनी' में घूस खोरी और कालाबजारी पर करारा कटाक्ष है।

रंगमंच की दृष्टि से श्री कुलभूषण चन्द्र कायस्थ की दो लघु-नाटिकाएं **'एग मार्का घियो'** (हिमभारती दिसम्बर, १९७५) और **'माऊ दी हूक'** (हिमभारती मार्च, १९७४) सर्व श्रेष्ठ एकांकियों में गिनी जा सकती हैं। एग मार्का घियो हास्य-प्रधान एकाँकी है जिसमें काले धन पर कटु व्यंग्य किया गया है। 'माऊ दी हूक' कांगड़े के एक सैनिक परिवार की वीरता का दिग्दर्शन है। कायस्थ जी की भाषा बड़ी चुस्त और मुहावरेदार है, जिससे एकांकी अत्यन्त मनोरंजक सिद्ध होते हैं। यथा —**"इत्थु ता खुशिया ने पटकोयो जीभ लबड़ूआं तिक्कर नी पुजादी।" "हां, हां अग्गे ही पुत्रें तिन्न सालां लाईने प्रैप पास किता। हुण दिखगी जे अगले कुम्भ दे मेले तिक्कर सैं बी० ए० पास करी लेंगा।"** **'रिड़कू दी आत्मा'** नाम से हिमभारती सितम्बर १९७८ अंक में श्री ओंकार लाल भारद्वाज का एकांकी प्रकाशित हुआ है। इसमें कांगड़ा क्षेत्र के ग्राम्य जीवन की परिस्थितियों के बारे में सचमुच भारद्वाज जी की अपनी आत्मा बोल उठी है। उनकी भाषा बड़ी परिनिष्ठित और वाक्यवली चुस्त है जिससे एकांकी एक सुन्दर रंगमंचीय प्रदर्शन के रूप में सामने आया है। ग्रामीण मुहावरों का उत्तम संयोग देखे बनता है, यथा—**"क्या. पता था जे नरेलां दियां बेली बीबड़ लगणे हन; घरां दे गुद्दड़ क्या बखूरने; घेला हत्थ आई जांदा पर बेला नी औंदा; घरां दा घरेड़ा; तू कहजो चिक्कड़ छुआलादी आदि।"** पहाड़ी साहित्य को प्रो० हरिराम जस्टा ने विशिष्ट रचनाओं का योगदान दिया है। ऐसी ही रचनाओं में उनका **'झगड़ू काका'** एकांकी

सोम

हिमभारती दिसम्बर १९७९ अंक में प्रकाशित हुआ है। यह एकांकी का कथानक परिवार नियोजन से सम्बन्धित है और यह आकाशवाणी से भी प्रसारित हुआ है। भाषा की मधुरता और संवादों की स्वाभाविकता के कारण यह पहाड़ी भाषा के सफल रंगमंचीय नाटकों में से एक है।

भाषा एवं संस्कृति विभाग ने **'सोला सिंगी'** नाम से एक पहाड़ी एकांकी संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें सोलह विशिष्ट एकांकी संकलित हैं। इनमें से डा० आत्माराम का 'रोसनी' और श्री चन्द्रशेखर बेबस का 'कबीत' पूर्व प्रकाशित और चर्चित हैं। श्री चन्द्रमणि बशिष्ट के 'लेकटे' की कथावस्तु और शैली वही है जो उनके पूर्व प्रकाशित एकांकी 'जब तिनके बिखरी गोबें' की है। श्री खेमराज गुप्त का 'टूणा टेरा' पहाड़ी जनमानस के अन्धविश्वास, अज्ञानता और जादू टोणे पर आधारित सुन्दर लोक भाषा और शैला में रचित एकांकी है। श्री नरेन्द्र अरुण का 'से कवि बणिया' कवि जीवन पर कटु व्यंग्य है। प्रो० हरिराम जस्टा के 'भाई रा प्यार' में रामायण की पौराणिक-कथा राम के प्रति भरत के प्यार को पहाड़ी शैली में नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया गया है। श्री काहन सिंह जमाल के एकांकी 'तरक्की' में ग्रामीण क्षेत्र में हुए विकास विशेषतः कृषि की उन्नति का प्रदर्शन है। श्री विजय कुमार पण्डित द्वारा लिखित 'पहले हम सुनेंगे' परिवार नियोजन पर एक हास्य नाटिका है। बलिदान में श्री हरि प्रसाद सुमन ने चम्बा की उस लोक-कथा को नाटकीय रूप दिया है जिसके अनुसार वहां की रानी ने चम्बा में पानी लाने की खातिर कुल्ह के लिए अपना जीवन बलिदान दिया था। 'सियाणयां रित पिच्छयाणयां' में श्री भारद्वाज ने सास-बहु के बहुचर्चित विषय को लेकर इस सम्बन्ध में सास की भी दुर्दशा होती है इस तथ्य को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। डॉ० खुशी राम गौतम की एकांकी 'स्याणी शीख' सीमित और सुनियोजित परिवार के महत्व का दिग्दर्शन कराता है। 'कठेवा' में प्रो० ज्ञान चन्द प्रकाश ने मध्यवर्गीय परिवार के वर्तमान युग के मूल्यों की संक्रान्ति को सफलता से दर्शाया है। श्री मनसाराम शर्मा द्वारा प्रणीत एकांकी 'गीत गौए-धरत सारी' में युवा-पीढ़ी के वर्तमान सामाजिक मूल्यों तथा पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं के बीच कड़े संघर्ष का प्रतिपादन हुआ है। 'जीण सहारा' में श्री शमि शर्मा ने किसान की विवशता की करुण गाथा को एकांकी का रूप दिया है। महात्मा गांधी की शांति प्रिय नीति को लेकर श्री दलीप वर्मा ने 'शान्तिया रा देवता' नाम से लघुनाटिका का सृजन किया है, परन्तु यह झलकी मात्र है। श्री के०सी० कायस्थ का 'झूठे दे सिर पौले' एक उत्कृष्ट हास्य नाटिका है। इसके संवाद बड़े चुस्त और रोचक हैं।

पहाड़ी में आज तक लिखे नाटकों में पूर्णाकार नाटकों का अभाव रहा है। इस अभाव की प्रो० नारायणचन्द पराशर का हिम-धारा जनवरी–अगस्त, १९७४ हिमाचल वीर विशेषांक में प्रकाशित नाटक **'आईं कनैं तिस रा प्रां'** काफी हद तक पूर्ति करता है। यह तीन अंकों में प्रकाशित आठ दृश्यों का आज के सभी नाटकों में सब से बड़ा है। केवल बड़ा ही नहीं अपितु मानदण्डों की सभी दृष्टियों से एक सफल नाटक है। मूलतः यह सैनिक-जीवन पर आधारित है, परन्तु इसमें हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा क्षेत्र के ग्रामीण जीवन की पूर्ण झांकी प्रस्तुत हुई है। आलेख अत्यन्त प्रभावशाली है और साहित्य तथा रंगमंच दोनों दृष्टियों से एक महत्वपूर्ण नाटक है। अनेक स्थानों पर नाटक के क्रास-कट सम्वाद बहुत आकर्षक बन पड़े हैं जिसमें आधा सम्वाद

एक पात्र और आधा सम्वाद दूसरा पात्र कह कर स्थिति को बड़ा मनोरंजक बनाता है। इस नाटक में पराशर जी का पहाड़ी संस्कृति और पहाड़ी भाषा से घनिष्ट प्रेम भी परिलक्षित होता है। श्री पराशर जी की भाषा अत्यन्त मधुर और वाक्यवली बड़ी स्वाभाविक है। उनके इस नाटक को पहाड़ी का प्रतिनिधि नाटक कहा जा सकता है। हिमधारा जुलाई १९७३ अंक में एक और विशिष्ट नाटक प्रकाशित हुआ '**नीच**' है। पत्रिका के सम्पादक के अनुसार श्री रूप शर्मा निर्दोष द्वारा लिखित यह एकांकी हिमाचल स्कूल नाटक प्रतियोगिता में सारे स्कूलों में सर्वप्रथम घोषित किया गया है। सम्पादक के इस कथन में बिल्कुल सच्चाई है। इसमें निर्जीव रूढ़ियों और भ्रष्ट मान्यताओं का निराकार करके छुआछूत पर करारा प्रहार किया गया है।

पहाड़ी नाटक लेखन में श्री अश्विनीकुमार गर्ग का योगदान बहुत विशिष्ट है। सम्भवत: वे पहले पहाड़ी नाटककार हैं जिन्होंने निजी तौर पर '**दृश्यावली**' नाम से पहाड़ी में दस एकांकियों का पूर्ण संग्रह प्रकाशित किया है। शाहजी, रखड़ी, मैं चली, फिरी मिलगे, दारु, मृत्यु लोक, आशीर्वाद, अभिमन्यु, होली और दधीचि शीर्ष से श्री गर्ग ने दहेज प्रथा, मद्य-निषेध, छुआछूत, भाई-बहिन प्यार और परिवार नियोजन आदि सामाजिक परिस्थितियों को एकांकियों का विषय बनाया है। सभी एकांकियों का आकाशवाणी से प्रसारण हुआ है और इस तरह विषय वस्तु और नाट्य शिल्प दोनों दृष्टियों से दृश्यावली समृद्ध तथा सफल प्रदर्शनों का संग्रह है। अभिमन्यु जैसे एकांकी में शीर्षक पौराणिक देकर वर्तमान समाज का कथानक प्रस्तुत करना सफल नाटककार का प्रदर्शन सिद्ध होता है।

पहाड़ी नाटक-लेखन क्रम में कुछ छोटी झलकियों के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनमें कुमारी निर्मल गुप्ता की '**लाटरी**' हिम भारती दिसम्बर १९७३, '**वार्तालाप**' हिम भारती सितम्बर १९७१, श्री श्रीकान्त प्रत्यूष का' **बड़ा बड्डा माणहू**' हिम भारती दिसम्बर १९७२, श्री बाबूराम गर्ग का '**रोटिया रा टुकड़ू**' हिम भारती सितम्बर १९७४, श्री कृष्णकुमार नूतन की '**सोने री चिड़िया**' हिम भारती सितम्बर १९७८ और श्री बदरीसिंह भाटिया का '**सासू और दवा**' हिम-भारती १९७९ अंक में प्रकाशित हुए हैं। इनमें 'सोने की चिड़िया' तथा 'सासु और दवा' दोनों भाषा और शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'सोने की चिड़िया' में लोक-सेवा हित के लिए दान तथा 'सासू और दवा' में सास और बहू के सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। सास की हर बात कड़वी होती है, क्योंकि वह सास है, बुढ़िया है, मरती भी नहीं। बहू उससे कुछ नहीं सीखना चाहती, क्योंकि वह पढ़ी लिखी है। सब कुछ जानती है। बुढ़िया मरती है, आखिर सास ने मरना ही है। सास कंजूस थी। घी बचा-बचा कर टीन भरे रखे हैं। बहू आज चावल केवल घी में पकायेगी। पानी में नहीं। परन्तु केवल घी में भी चावल पकते हैं? यह शिक्षा किससे किसने सीखनी थी। अत: "**बेबे चौल बणे क्यों ? ..... ना बेबे ज्यों के त्यों।**"

हिमाचल कला संस्कृति एवम् भाषा अकादमी ने प्रदेश की प्रसिद्ध लोक-गाथाओं के आधार पर चार नाटकों का आयोजन किया है। इनमें से 'लाटी शरजंग और हीना डण्डुव' तथा 'रानी सुई का बलिदान' हिन्दी में लिखित है। परन्तु 'पवाड़ा झांखू अजवा' और 'सूनी भूंकू'

पहाड़ी मे लिखित और प्रदर्शित हैं। 'पवाड़ा झांखू अजवा' दो गांवों के बीच झगड़ा का दिग्दर्शन करता है और 'सूनी-भूंकू' सच्ची प्रेम गाथा पर आधारित है। इनके प्रदेश और प्रदेश के बाहर अनेक प्रदर्शन हुए हैं।

वर्ष १९७० से प्रदेश के सभी कालेजों की पत्रिकाओं में पहाड़ी का एक अलग अनुभाग खोला गया था। पत्रिकाओं में अंग्रेजी, विज्ञान, हिन्दी और संस्कृत अनुभागों के साथ-साथ पहाड़ी अनुभाग में पहाड़ी भाषा की रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। इन पत्रिकाओं में पहाड़ी के वास्तविक रूप को देखा जा सकता है। इनमें पहाड़ी में महत्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। हमारे सामने इस समय ऐसी पत्रिकाओं की प्रतियां असानी से उपलब्ध नहीं हैं। उनमें प्रकाशित रचनाओं की विशेष समीक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है। तीन पत्रिकाएं उपलब्ध होने के कारण ऐसा प्रतिवेदन किया जा रहा है। इन तीनों प्रतियों में पहाड़ी में एक-एक एकांकी प्रकाशित हुए हैं। राजकीय कालेज शिमला की १९७४-७५ हिमरश्मि अंक में श्री करम चन्द लखटा का एकांकी **'हासणं रा जंरा'** प्रकाशित हुआ है। इसमें ग्रामीण वातावरण में विवाह की साधारण व्यवस्था का उल्लेख है। इसी पत्रिका के १९७५-७६ अंक में श्री नरवीर चन्द बेकटा के अकांकी **'सेब का सेव कौस के देव त कौस रे पेव'** में पहाड़ी प्रदेश के सेवों की फसल द्वारा बागवानों और व्यापारियों के बीच सौदाबाजी का प्रदर्शन हुआ है। श्री बेकटा को सेवों के उत्पादन का पूर्ण अनुभव है। इसमें छोटे बागवानों का व्यापारियों द्वारा खूब शोषण होता है। जिसकी ओर नाटककार ने सरकार का ध्यान दिलाया है। राजकीय कालेज कुल्लू की पत्रिका देवघरा के १९७४-७५ अंक में श्री लालचन्द ठाकुर का **'पुराणा शाढ़ और नया शाढ़'** एकांकी रंगमंच की दृष्टि से एक सफल प्रदर्शन है। इसमें परिवार से सम्बन्धित पुरानी और नई मान्यताओं का संघर्ष दिखाया गया है जिसमें अन्ततः नई विचारधारा की विजय होती है।

इसमें संदेह नहीं कि पहाड़ी भाषा में विधिवत नाटक लेखन का आरम्भ केवल बारह-तेरह वर्ष पूर्व हुआ है। परन्तु इस अल्प-अवधि में पहाड़ी साहित्य को जितने नाटक-एकांकी उपलब्ध हुए हैं वे सराहनीय हैं। और आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में और महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाश में आएंगे।

लोक संगीत की समृद्ध जीवन शक्ति

—स्वर्गीय हरिचन्द पराशर

परम्परागत संगीत के विविध रूपों का सम्पन्न अतीत रहा है। वे विविध रूप अब भी चलते आ रहे हैं। लोक-संगीत उन भावों और भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं जो जनता की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठ भूमि से उगे होते हैं और जुड़े होते हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि गांवों के गायक, चारण-भाट, स्त्री समाज समय-समय पर नये पद्यांश घढ़ते हैं और पुरानों को भी संशोधित करते रहते हैं परन्तु ऐसा करने पर भी स्वर और ताल के मूल लक्षणों से वे बाहर नहीं जाते।

लोक-संगीत की सामग्री हमें निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त हो सकती है :

१. भक्ति के भजन और कीर्तन।

२. प्राचीन पद्यगाथाएं जैसे पूर्ण भक्त।

३. संस्कार गीत, ऋतु गीत, कर्म करते समय के गीत, अनुष्ठान गीत, प्रेम गीत। इन गीतों में मिश्रित प्रभावों की एक मोटी सतह बन जाती है। सामाजिक जीवन में वर्णसंकरीय सांस्कृतिक घटकों में से होता हुआ इन गीतों का संगीत अति जीवित रहता है। परन्तु संरचनात्मक छायाएं जाति और क्षेत्र के अनुसार बदल जाती हैं।

सामाजिक मानव शक्तियों का विचार है कि किसी भी देश के लोक गीत संगीत में प्रभावी लक्षण जीवित रहते हैं, कभी मरते नहीं। सामाजिक समारोहों और अनुष्ठानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोक संगीत की क्षेत्रीय बोलियां चलती रहती हैं।लोक संगीत का मास-मीडिया तकनीक से ग्रन्थिबन्धन करके अनेक लोक प्रिय संगीत शैलियों को जन्म देता है। यह नवीन शैलियां उस लोकगीत के निजी भाषाई क्षेत्र से बाहर भी प्रसिद्ध हो जाती हैं।

H.A.A.C.L. आर॰एन॰ 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि॰प्र॰ द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच ब्लाज़म काटेज़ शिमला-2 द्वारा प्रसारित तथा **नवीन प्रिंटिंग प्रैस',** **जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)** द्वारा मुद्रित।